दस एकांकी

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

मूल्य तीन रुपये पचास पैसे

मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा

विषय सूची

भूमिका

हिन्दी एकांकी—स्वरूप और विकास

एकाकी नाटक साहित्य का आधुनिक और लोकप्रिय अग है। नाटक की तरह एकाकी नाटक भी दृश्यकाव्यान्तर्गत है। अत टेकनीक की दृष्टि से एकाकी रगमचीय रचना है। आज विश्व साहित्य मे एकाकी बडे वेग से दौड रहा है, हिन्दी एकाकी इसमे पीछे हो, ऐसी बात नही है। हिन्दी एकांकी ने आज अपना एक लक्ष्य निश्चित और स्थिर कर लिया है। इस वैज्ञानिक और बुद्धिवादी युग की व्यस्तता और एकाकी साहित्य की क्षिप्र प्रगति को ध्यान मे रखते हुए आज उसके महत्त्व को स्वीकार करने मे मत वैषम्य का स्थान कही नही रह गया है। आज का अति व्यस्त मानव 'शार्ट-कट्स' मे विश्वास करता है। उसके पास न तो इतना समय है और न रुचि ही कि वह वृहदाकार रचना को धैर्य और मनोयोग से पढ सके। हाँ, इतना तो वह कर सकता है कि चलते-फिरते, घूमते-घामते कही रुककर, कही झुककर एक क्षण विशेष, एक घटना विशेष अथवा एक विचार या एक समस्या विशेष पर विचार करे, उसे देखे, पढ़े।

वास्तव मे एकाकी एक ऐसी ही नाट्यप्रधान विधा है जिसके माध्यम से मानव जीवन के किसी एक पक्ष, एक चरित्र, एक कार्य, एक परिपार्श्व, एक भाव की ऐसी कलात्मक व्यजना सम्भव है जिससे कि ये अविकल भाव अनेक की सहानुभूति और आत्मीयता प्राप्त कर लेते है। वैसे एकाकी शब्द अंग्रेजी के 'वन एक्ट प्ले' (one act play) का हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी मे पहले एकाकी शब्द के साथ 'प्ले' का समानार्थक शब्द नाटक लिखा जाता था। पर कालान्तर मे नाटक शब्द कही खो-सा गया और अब केवल एकाकी शब्द के उच्चारण के साथ ही एक अक के नाटक का चित्र हमारी आँखो के सामने झूल जाता है।

डा रामकुमार वर्मा तो एकाकी को एक मत्र, एक अकुश, एक गागर और काम का कुसुम-धनु मानते है

"मेरी दृष्टि भी जीवन का सकेत खोजने की चेष्टा मे रहती है। कोई ऐसा भाव-विन्दु मैं आँक सकूं, जिसमे जीवन का प्रतिनिधित्व झलक जाए। कोई ऐसी गागर भर दूं जिसमे सागर का अस्तित्व समा जाए, मेरे हाथ मे ऐसा अकुश आ जाए जिसके वश मे भावो का ऐरावत उठने-बैठने लगे। मेरी लेखनी से ऐसा मत्र निकले जिसके वश मे 'विधि हरि हर सुर सर्व' हो अथवा मेरे हाथो मे काम का ऐसा कुसुम-धनु हो जिससे सकल-भुवन अपने वश मे हो जाए। एकाकी ऐसा ही भाव-विन्दु है, ऐसी गागर है, ऐसा ही अकुश है, ऐसा ही मत्र और ऐसा ही काम का कुसुम-धनु है।"

एकाकी की परिभाषा अनेक विद्वानो ने की है पर प्राय उनमे साम्य ही अधिक दृष्टिगोचर होता है।

प्रो सद्गुरुशरण अवस्थी आकार-प्रकार पर दृष्टि रखकर एकाकी मे एक सुनिश्चित, सुकल्पित लक्ष्य, एक ही घटना, परिस्थिति अथवा समस्या, प्रभाव और सबके निदर्शन मे चातुरी को आवश्यक मानते हैं। वे एकाकियो मे लम्बे-लम्बे कथोपकथन, दृश्यो के आधिक्य, विषयान्तरता, वर्णन वाहुल्य तथा चरित्र-विकास के लम्बे प्रयोग या उलझी समस्याओ को अवाछनीय मानते है।

दूसरी ओर सेठ गोविन्ददासजी विषय की दृष्टि से अवस्थीजी से सहमत-से ही प्रतीत होते है। उनकी धारणा है कि एकाकी मे सर्वप्रथम किसी एक मूल विचार का होना आवश्यक है। सेठजी का अभिप्राय विचार शब्द से साधारण विचार मात्र न होकर जीवन की कोई समस्या है। वे एक ही समय की एक ही घटना, एक ही कृत्य के सम्बन्ध मे होना एकाकी के लिए अनिवार्य मानते है। सेठजी की दृष्टि मे वही एकाकी श्रेष्ठ है जिसमे तीव्र सघर्ष होता है। उनका मत है कि एकाकी वही उच्च-कोटि का होता है जिसमे तीव्र सघर्ष हो, सगठित एव मनोरजक कथा हो, विशद् चरित्र-चित्रण हो और स्वाभाविक कथोपकथन हो।

सामान्य रूप से एकाकी उस नाटक को कहते है जिसमे एक ही अक हो

और जो किसी एक सवेदना, एक तथ्य या प्रसग को प्रस्तुत करे। वह अपने आप मे पूर्ण होता है।

प्रसिद्ध एकाकीकार अश्क इस दृष्टिकोण के विरोध मे अपना मत प्रस्तुत करते है। उन्होने आकार पर बल दिया है। दृश्यो की अनेकता स्वीकार करते हुए भी उन एकाकियो को अधिक महत्त्व देते है जिनमे एक अक और एक ही दृश्य हो। उनके मतानुसार एकाकी ३० मिनट से लेकर ४५ मिनट तक समाप्त हो जाना चाहिए। वह रग-सकेत, कार्य-गति, अभिनय सवाद, वातावरण, चरित्र-चित्रण, प्रकाश अथवा छाया के प्रयोग को एकाकी के महत्त्वपूर्ण तत्त्व घोपित करते है। अश्क के विचार से सकलन-त्रय का गुम्फन एकाकी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है। अश्कजी की यह विचारधारा अपने आप मे कोई वजन नही रखती है, क्योकि आकार इतना महत्त्वपूर्ण नही होता जितना कि जीवन का निदर्शन। यदि किसी नाटक मे जीवन के एक पक्ष या तथ्य की अभिव्यक्ति होती है तो वह आकार मे छोटा हो यह कोई जँचने वाली वात नही है। हाँ, सामाजिको की रुचि मे बाधा न हो, यह आवश्यक शर्त अवश्य कही जा सकती है।

डा रामकुमार वर्मा ने भाव पक्ष और कला पक्ष दोनो को दृष्टि-पथ मे रखते हुए एकाकी के विपय मे लिखा है "मेरे सामने एकाकी नाटक की भावना वैसी ही है जैसे एक तितली फूल पर बैठकर उड जाए। उसकी घटना-वस्तु से जीवन मनोरजन के साथ निखरे रूप मे आ जावे। समझने मे न तो प्रयास की ही आवश्यकता हो न थकावट ही हो। एक पृष्ठ उलट जाए और उसको उलटाते हुए आपके मुख पर सुख और सतोप हो।"

डा नगेन्द्र के मतानुसार एकाकी मे एक अक, विस्तार की सीमा कहानी जैसी, जीवन का एक पहलू, एक महत्त्वपूर्ण घटना, एक विशेप परिस्थिति अथवा उद्दीप्त क्षण, एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता की अनिवार्यता, संकलन-त्रय का साधारणत पालन, प्रभाव और वस्तु का ऐक्य होना एकाकी के लिए वाछनीय है। वे स्थान और काम की अनिवार्यता को नही स्वीकारते हैं।

यद्यपि डा एस पी खत्री ने एकाकी की कोई निश्चित परिभाषा नही दी है तथापि वे सक्षिप्तता, समय की कमी और परिधि सकोच की ओर

इगित करते है। वे कथावस्तु, अभिनयशीलता, एक ही प्रभाव के लिए एक ही भावना के चित्रण को विशेष महत्त्व देते हैं। डा सत्येन्द्र भी संकलन-त्रय, गति, सघर्ष एव विकास, एकदम समाप्ति (आकस्मिकता) आदि को एकाकी के लिए अनिवार्य मानते हैं। डा सत्येन्द्र कला की दृष्टि से चरमोत्कर्ष को आवश्यक नही मानते है।

उपर्युक्त परिभाषाओ के आधार पर एकाकी का कुछ नही बहुत कुछ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। कुछ लोग एकाकी को नाटक का सक्षिप्त सस्करण बताते है, कुछ स्वतन्त्र विधा स्वीकारते है। मैं समझता हूँ एकाकी प्रारम्भ मे भले ही नाटक का सक्षिप्त रूप लेकर हिन्दी जनता के समक्ष आया हो पर आज उसका विकास हो गया है और वह प्रौढ विधा के रूप मे हमारे समक्ष है। कलेवर की दृष्टि से एकाकी एक अक का नाटक है, किन्तु दृश्य-विधान के अनुसार उसके दो भेद किये गये है। पहला भेद तो वह है कि जिसमे एकाकी मे केवल एक ही दृश्य रखा गया है और दूसरा वह है जिसमे अनेक दृश्यो की योजना की गयी है। पहली श्रेणी के एकाकी मे कथा किसी घटित घटना के मार्मिक स्थल से आरम्भ होती है और भावी घटनाओ के अवरोध से जिज्ञासा तथा कुतूहल की वृद्धि करती हुई तीव्र गति से विस्मयपूर्ण सक्रमण विन्दु तक पहुँचती है। इनमे त्रिक्-सगति का पूर्ण निर्वाह होता है। दूसरी श्रेणी के एकाकी वे हैं जिनमे विभिन्न स्थलो और समयो की घटना के द्वारा कथा मे वक्रता या विचित्रता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। इसी का परिणाम यह होता है कि अनेक दृश्यो की योजना करनी पड जाती है। इस प्रकार के एकाकियो मे कथा की धारा भूप्रदेश की प्रवाहशीलता, विस्तृत मूलवती सरिता के सदृश होती है जो ऋजु या वक्र गति से अग्रगामी होकर उद्देश्य-सिन्धु मे मिल जाती है। इस प्रकार की कृतियो मे समस्या को उत्पन्न करने और तथ्य को उद्घाटित करने मे ही कृति की सफलता स्वीकारी जाती है।

मर्यादा की दृष्टि से यदि हम एकाकी पर विचार-विमर्श करें तो स्पष्ट होगा कि एकाकी मे केवल अधिकाधिक कथा की ही प्रमुखता होती है। वही घटना या कथा प्रारम्भ होकर विकसित होती हुई अन्त की ओर वढती है। इसी का परिणाम यह होता है कि उसमे जटिलता नहीं आने

पाती है। उसमें प्राय एक घटना अनेक लघु घटनाओ के आश्रय मे पलकर आगे विकास को प्राप्त होती है। इसमे कम से कम पात्र होते हैं जो किसी न किसी प्रकार कथा से नैकट्य स्थापित किये हुए होते है। इस प्रकार के एकाकियो मे किसी सुनिश्चित ध्येय की अभिव्यजना अव्यर्थ शव्दो मे सतुलन और मितव्ययिता के साथ की जाती है। उसमे बाह्य या अन्त सघर्ष भी रहता है, जो परिस्थिति, वातावरण के अनुसार उद्दीप्त होकर कथा के विकास मे सहायक होता है। कभी-कभी यही सघर्ष उद्देश्य के रूप मे भी अभिव्यक्त होता है, उसमे स्थान-काल की एकता अनिवार्य रूपेण नही स्वीकारी जाती है, किन्तु विकल्प से, शिल्प कौशल के माध्यम से स्थल, कार्य, काल का उचित सकलन किया जाता है।

सीमा, विस्तार और प्रभाव की दृष्टि से देखे तो विदित होगा एकाकी नाटक या अनेकाकी नाटक मे वही सम्बन्ध है जो कहानी और उपन्यास मे है। जहाँ अनेकाकी नाटक मे जीवन की विविधता, पात्राधिक्य, कथासूत्रो की सुविमर्शता, अक-बाहुल्य, चरित्र-वैचित्र्य, अनिश्चित कौतूहल, परिचयाधिक्य, चरम-विन्दु की व्यापकता तथा कथा की मदगामिता है वहाँ एकाकी मे जीवन की एकपक्षता, पात्र-परिमितता, कथा के प्रमुख सूत्र के प्रति आग्रह, एक अक का नियोजन, चारित्रिक सघनता, कौतूहल व्याप्ति, व्यजना की निर्देशिता और क्षिप्र कथाप्रवाह है।

कहानी और एकांकी

कुछ लोग एकाकी और कहानी को मिलाकर एक कर देते हैं, पर वस्तुत इनमें एक मौलिक अन्तर है। आकार-लघुता के आग्रह से हम इन दोनो विधाओ को एक भले ही कह ले, पर प्रकृति और आत्मा की दृष्टि से दोनो के लक्ष्य भिन्न-भिन्न है। चन्द्रगुप्त विद्यालकार ने लिखा है कि "एकाकी कहानी का रगमच पर खेला जाने वाला सस्करण-मात्र है।" एकाकी और कहानी मे उद्देश्य की दृष्टि से तो अन्तर है ही, टेकनीक की दृष्टि मे भी अन्तर स्पष्ट है। कहानी का उद्देश्य उसे पढने या सुनने से है और एकाकी का रंगमच पर खेलने मे। कहानीकार की दृष्टि मे पाठक ही प्रमुख होता है और एकाकीकार की दृष्टि सीधी रगमच पर जाकर

टिकती है, दर्शक ही उसकी दृष्टि मे प्रधान होता है। इस उद्देश्य सम्बन्धी अन्तर के साथ-साथ एकाकी और कहानी की टेकनीक मे अन्तर स्पष्ट है। एकाकीकार सर्वप्रथम अभिनय की ओर झुकता है। अभिनय के कारण मच सम्बन्धी अनेक बधनो को स्वीकार लेने के बाद ही वह आगे कदम उठाता है। एकाकी मे से यदि नाटकीयता या अभिनेयता वाला गुण निकाल दिया जाए तो वह कहानी का ही रूप धारण कर लेता है।

विद्यालकारजी ने जो बात कही है उससे मैं तनिक भी सहमत नही, क्योकि प्रत्येक कहानी को एकाकी के गुणो से विभूपित नही किया जा सकता है और न उसे रगमचीय विशेपताओ से विभूपित किया जा सकता है। वस्तुत इन दोनो मे भेद है। इनका स्वतत्र अस्तित्व है और रहेगा। डा रामकुमार वर्मा भी लिखते है "कहानी लज्जाशीला नारी की भाँति मच पर आने का साहस नही करती। वह पाठको के मनोमच पर ही अवगुण्ठन डाले हुए अपने विचार के नाखून से जीवन की भाव-भूमि कुरेदती रहती है।" अत यही कहना पडता है कि कहानी और एकाकी मे एकता हो सकती है कुछ विचार-विन्दुओ मे, पर दोनो को एक ही कोटि मे नही रखा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् बडी आसानी से एकाकी के तत्त्वो को इस प्रकार रखा जा सकता है—कथावस्तु, पात्र या चरित्र-चित्रण, कथोपकथन या सवाद, भापा शैली और उद्देश्य। इन तत्त्वो के अतिरिक्त सकलन-त्रय, सघर्प या द्वन्द्व को भी एकाकी के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

कथावस्तु—यथार्थ जीवन पर आधारित जीवन के किसी भी क्षेत्र से एकाकी की कथावस्तु का चयन किया जा सकता है, पर उसमे उत्तेजना, रोचकता और विस्मय के गुण होने चाहिए। कथावस्तु के विकास की ये पाँच अवस्थाएँ हैं—१ आरम्भ, २ नाटकीय स्थल, ३ द्वन्द्व, ४ चरमसीमा, ५ परिणति।

सफल एकाकी का प्रथम वाक्य ही कौतूहल की असीम शक्ति से पूर्ण होता है। अतीत तो स्पष्ट होता ही है और कथा तेजी से नाटकीय स्थिति की ओर वढती है। समाप्ति पर कुछ ऐसा नही रह जाता है जो नाटककार को कहना है।

परिस्थितियाँ, घटना, पात्र, दृश्य, वातावरण-वैचित्र्य और सौन्दर्य प्रदर्शन के लिए अनेक दृश्यो वाले एकाकी मे त्रिक्-सगति नहीं रह पाती है। 'भोर का तारा' के पहले दृश्य मे रगभूमि कवि शेखर का साधारण गृह है और दूसरे दृश्य मे उज्जयिनी के आर्य देवदत्त का विशाल भवन है जिसमे यशस्वी महाकवि शेखर अपनी प्रेमपत्नी छाया के साथ सुख और वैभव से रहने लगता है।

पात्र—पात्रो के अभाव से तो किसी भी नाट्य-रूप की कल्पना नही की जा सकती है लेकिन एकाकी के सम्बन्ध मे जहाँ तक सम्भव हो पात्र कम ही होने चाहिए। पात्र विधान के सम्बन्ध मे पहली बात यह है कि एकाकी मे उनकी सख्या पाँच या छह से अधिक नही होती। दूसरे, उसमे केवल मुख्य और गौण दोनो प्रकार के पात्र रखे जा सकते है। साहस, प्रणय और वीरता की कहानी मे नायक के साथ प्रतिनायक की कल्पना भी एकाकी को प्रभावशाली बना देती है। तीसरे, पात्रो मे से किसी एक को विदूषक बना दिया जाता है या कभी-कभी पात्रो मे से ही किसी के व्यक्तित्व मे हास्य, विनोद भर दिया जाता है। पात्रो को सजीव-व्यक्तित्ववान होना चाहिए नही तो एकाकी मे आकर्षण नही रहता है। कहा जाता है कि एकाकी के चरित्र विधान में मनोविज्ञान, वातावरण के अनुसार ही योजना होनी चाहिए। पात्रो मे अन्तर्द्वन्द्व अधिक आवश्यक है और इसके लिए एकाकीकार मे पटुता भी होनी चाहिए, साधारण पटुता नही, ऐसी पटुता जो पाठक के मन मे यह भाव पैदा कर दे कि ठीक क्या है। गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'सोहागबिन्दी' में जब काली बाबू अपनी पत्नी प्रतिमा के अस्थिखण्ड रो-रोकर बक्स मे रखने जा रहे है तब विनोद बाबू को लिखे गये पत्र मे प्रतिमा के शब्दो—" · मैं हर घडी तुम्हारी राह देखा करती हूँ फिर किससे पूछूँ तुम्हारा पता ? कैसे पूछूँ ? "—को पढकर सन्न रह जाते है। उनके मन मे पत्नी के पतिव्रत के सम्बन्ध मे भाव-सघर्ष इतनी जल्दी उठता है कि उनके हाथ से अस्थिखण्ड गिर जाता है और वे धम्म से गिर पडते है।

पात्रो का स्वाभाविक होना आवश्यक है। कृत्रिमता का आवरण पात्रो के व्यक्तित्व पर नही चढा होना चाहिए। उनका विकास प्राकृतिक

हो, एकाकीकार के भाव या विचार पात्रो पर ऊपर से लादे गये नही होने चाहिए। पात्रो का व्यक्तित्व भी स्वतत्र होना परमावश्यक है। वे क्रीडा-कदु नही होने चाहिए। एकाकी के सीमित समय मे पात्रो के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण जानकारी देना एकाकीकार का कठिन कर्म है।

संवाद या कथोपकथन—एकाकी शिल्प का तीसरा तत्त्व कथोपकथन है। इसे ही एकाकी का प्राण या सर्वस्व मानना चाहिए। कथोपकथनो की योजना मे एकाकीकार को निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए

१ कथोपकथन ऐसे हो जो पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ को उद्घाटित करते हो।

२ सवादो की एकमात्र विशेषता यह है कि वे कथावस्तु को गतिशील बनायें।

३ कथोपकथन सक्षिप्त और प्रभावशाली होने चाहिए।

४ कथोपकथनो की भाषा सरल और सजीव होनी चाहिए।

एकाकी मे कथोपकथन यदि इन उपर्युक्त बातो मे योग नही देते हैं तो वे महत्त्वहीन और असगत कहे जाते है। एकाकीकार को एकाकी की रचना मे आवश्यक सवादो की सृष्टि से यथाशक्ति बचना चाहिए। वाक्य तो बहुत दूर की बात है, एक शब्द भी निरर्थक नही होना चाहिए। स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, वाग्विदग्धता, रोचकता, प्रभावोत्पादकता सवाद के उत्कृष्ट गुण है। सवाद उपदेशात्मक नही होने चाहिए। वे सभाषण न बनें इस बात की ओर भी लेखक का पूरा-पूरा ध्यान होना चाहिए।

प्रत्येक पात्र को उसकी जाति, गुण और पद के आधार पर वेशभूषा और वार्तालाप करना चाहिए। प्रत्येक पात्र की भाषा और शैली मे अन्तर होना चाहिए। कही ऐसा न हो कि निम्नवर्गीय प्राणी भी शुद्ध भाषा का प्रयोग करने लग जायें। अत एकाकीकार को चाहिए कि वह अपने पात्रों से शैलीगत और भाषागत भेद रखे। अशिक्षित और साधारण पात्र के मुख से विशुद्ध भाषा और उच्च विचारो को व्यक्त कराना एकाकी कला की हत्या कराना है। डा रामकुमार वर्मा ने लिखा है "केवल मनोरजन के लिए या नाटककार द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादन

के लिए कथोपकथन का विस्तार करना पात्रो के मुख से उनकी स्वाभाविक ध्वनि छीन लेना है। फिर तो नाटक मे पात्र नही बोलते, नाटककार या एकाकीकार पात्रो के कण्ठ मे कोयल या कौवा बन-बनकर बोलता है।"

स्वगत भाषणो का आधुनिक एकाकियो मे कोई स्थान ही नही रह गया है। पात्र यदि एकान्त मे बोलते है तो केवल इसी अर्थ से कि किसी पात्र-विशेष की मानसिक स्थिति का चित्रण करना है। हाँ, यह आवश्यक है कि इस प्रकार के एकान्त भाषण दीर्घ न हो। इस प्रकार के भाषणो की अतिशयता नाटक को बोझिल बना देती है।

भाषा-शैली—एकाकी की भाषा और शैली मे ओज और ध्वनि तथा शैली मे पकड की प्रधानता रहती है। भाषा सुगम और जन-साधारण की होनी चाहिए। एकाकी का सर्वप्रधान गुण अभिनेयता है। अभिनेय या रगमचीय एकाकियो की भाषा स्वाभाविक और सरल होनी चाहिए। उद्देश्य की एकता और प्रभाव की अन्विति एकाकी के प्रधान गुण है। प्रभाव और द्रुतगति एकाकी को अधिक रोचक बना देते है। उद्देश्यहीन एकाकी की कल्पना केवल कल्पना है। उद्देश्य की दृष्टि से भी एकाकियो के अनेक स्तर और भेद हो सकते है।

इन सबके साथ-साथ नाट्य-सकेत या रग-सकेत कथा के परिपार्श्व से सम्बन्ध रखते है। प्रत्येक एकाकीकार अथवा नाटककार को मात्र लेखक ही नही निर्देशक भी होना चाहिए अन्यथा रगमच सम्बन्धी अनेक भूलें उससे हो सकती है। नाटककार अपनी कृति मे व्यापक नाटकीय निर्देश देता है, इससे चाहे अनुभवी निर्देशको को कोई सहायता न भी पहुँचे पर लेखक का मन्तव्य समझने मे सुगमता होती है। लेखक इन नाटकीय एव रगमचीय सकेतो को केवल अभिनय की दृष्टि से ही नही लिखता है वरन् इसके विपरीत उसका प्रयोजन कुछ और भी होता है। यह प्रयोजन उन बातों को प्रकट करता है जो सवादो से प्रकट नही होती है। उदाहरणार्थ किसी कक्ष की सजावट का ब्योरा एकाकीकार देता है तो वह ब्योरा उस कक्ष मे रहने वाले पात्र के अनेक सस्कारो, विश्वासो का परिचायक होता है। यदि एकाकीकार ने लिखा कि कक्ष मे बायी ओर को

महात्मा गांधी का चित्र है तो दर्शक, पाठक उस कक्ष में स्थित पात्र के विचारों से सहज ही परिचय प्राप्त कर लेंगे। अतः स्पष्ट है कि एकाकी मे रंग-संकेत या नाट्य संकेत का विशेष महत्त्व है।

प्रभाव ऐक्य—एकाकी मे घटना होती है पर घटनाएँ नही, समस्या होती है, समस्याएँ नही, इसलिए सम्पूर्ण एकाकी उसी समस्या या उस विचार की ओर अग्रसर होता रहता है जो समक्ष है। एकाकी अपने पाठक के ऊपर एक प्रभाव विशेष छोड जाना चाहता है और यदि वह उस समस्या का, जिसे वह लेकर चला है, हल भी सुझा दे तो उसके कलात्मक सौन्दर्य मे किसे सदेह हो सकता है। साराश है कि प्रभावान्विति एकाकी की अपनी कलात्मक विशेषता है।

एकांकी के प्रकार

प्रकार की दृष्टि से एकाकियो को निम्नाकित वर्गो मे रखा जा सकता है १. सुखान्त एकाकी, २ दुखान्त एकाकी, ३ प्रहसन एकाकी, ४ फेन्टेसी, ५ गीति-नाट्य, ६ झाँकी, ७ सवाद या सभाषण, ८ मोनो-ड्रामा, ९ रेडियो नाटक इत्यादि।

सुखान्त एकाकी का उद्देश्य भी प्राय. वही है जो बडे सुखान्त नाटक का होता है। अन्तर केवल परिधि की सक्षिप्तता का है। सुखान्त एकाकी अल्पकाल मे कोई आनददायक क्षण या समस्या उत्पन्न करता है। किसी समस्या विशेष को समक्ष रखकर ही इनका निर्माण होता है। इसी कारण इन्हे समस्या एकाकी कहते है।

प्रहसन का उद्देश्य व्यक्ति या समाज की किसी त्रुटि, रूढि, दुर्बलता अथवा दुर्गुण को प्रकाश मे लाकर उपहास की वस्तु बना देना है। नाटककार का लक्ष्य हँसी-हँसी मे समाज-सुधार करना होता है। फेन्टेसी एकाकी का अति नाटकीय रोमाटिक स्वरूप होता है जिसका ताना-बाना स्वप्न से बना हुआ होता है। गीति-नाट्य मे कविता या गीतो के माध्यम से एकाकीकार किसी भावपूर्ण स्थल का चित्राकन करता है।

झाँकी मे सकलन-त्रय के अनुसार किसी उद्दीप्त क्षण को अकित किया जाता है। सभाषण एकाकी कला का पहला रूप है। इसमे दो

पात्र पारस्परिक सवाद द्वारा किसी मत का प्रतिपादन करते हैं। मोनो-ड्रामा मे एक ही पात्र स्वगत रूप मे किसी घटना या आपबीती को निजी अभिनय द्वारा प्रकट करता है। रेडियो नाटक केवल ध्वनि पर आधारित है। ध्वनि के उतार-चढाव के बल पर अभिनेता भाव व्यक्त करते हैं। रग-मच की भाँति अभिनेता के शारीरिक हाव-भाव का प्रभाव प्रत्यक्ष नही होता। उन सम्पूर्ण हाव-भावो की अभिव्यक्ति ध्वनि के द्वारा ही सभव होती है। आज की दुनिया मे रेडियो नाटक का अत्यधिक प्रसार हो रहा है।

विषय की दृष्टि से एकाकी के निम्न भेद किये जा सकते हैं

१ सामाजिक एकाकी — ७ यथार्थिक एकाकी
२ पौराणिक एकाकी — ८ ऐतिहासिक एकाकी
३. सास्कृतिक एकाकी — ९ मनोविश्लेपण मूलक एकाकी
४ राजनीतिक एकाकी — १० दार्शनिक एकाकी
५ घटना-प्रधान एकाकी — ११ राष्ट्रीय भावनाओ के प्रचारक एकाकी
६. चरित्र-प्रधान एकाकी — १२ समस्या-प्रधान एकाकी

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आज एकाकी वहुविध होकर हिन्दी जगत् के समक्ष आ रहा है। इससे हम एकाकी के उज्ज्वल भविष्य की ही कल्पना कर सकते हैं।

एकाकी का उद्भव

एकाकी के उद्भव के विषय मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। कुछ विद्वान् तो ऐसे हैं जो एकाकी को भारतीय दृष्टिकोण से नापते है और कहते हैं कि एकाकी के सामने भारतीय आदर्श रहा है। इस मत के समर्थको मे प्रमुख रूप से डा सरनामसिह शर्मा 'करुण', प्रो ललिताप्रसाद सुकुल, प्रो सद्गुरुशरण अवस्थी हैं। प्रो सद्गुरुशरण अवस्थी ने कहा है कि "यह न समझना चाहिए कि भारत मे एकाकी थे ही नही।" कुछ विद्वान् एकाकी को पश्चिम की देन मानते है। जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी कहानी और उपन्यास की प्रेरणा का श्रेय वे पाश्चात्य साहित्य को देते हैं उसी प्रकार एकाकी की प्रेरणा भी वे वही से मानते हैं।

खैर जो हो सो हो, हमे इतना मानने मे कोई आपत्ति नही है कि

हिन्दी एकाकी को पश्चिमी साहित्य से बडी प्रेरणा मिली है पर यह मानने को हम कभी सहमत नही हो सकते कि एकाकी पश्चिम की देन है। वस्तुतः हिन्दी के सामने एकाकी का भारतीय आदर्श रहा है। धनजय के 'दशरूपक' से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती हैं। सस्कृत साहित्य मे एकाकी के पन्द्रह प्रकार मिलते है जिनमे से पाँच—भाण, प्रहसन, व्यायोग, वीथी और अक—रूपक भेद मे आते हैं और शेष दस—गोष्ठी, नाट्य, रासक, उल्लाक, काव्य, रासक-प्रेखण, श्रीगदित, विलासिका, भाणिका और हल्लीश—उपरूपक से अठारह भेदो के अन्तर्गत हैं। इसमे स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य मे आधुनिक एकाकी के स्वरूप से कही अधिक विकसित स्वरूप उपस्थित था, पर हाँ इतना माने बिना काम नही चल सकता कि सस्कृत मे एकाकी साहित्य अत्यल्प मात्रा मे लिखा गया है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि प्राचीन भारतीय आचार्यों के पास समय अधिक था, इसलिए उनकी प्रकृति एकाकी की अपेक्षा नाटको की ओर रही जो दीर्घकार होते थे।

पाश्चात्य विद्वानो ने तो केवल इतना किया है कि भारतीयो की सोई हुई चेतना को सजग किया है। आज के युग मे हिन्दी और अग्रेजी का सम्बन्ध बडा गहरा हो गया है इससे साहित्य भी अछूता नही बचा है। आज युग की आवश्यकता ने साहित्यकारो की रुचि मे भी परिवर्द्धन किया है और आज तो धडाधड एकाकी निकल रहे है। अग्रेजी मे एकाकी का लक्ष्य केवल भावोन्मेष ही नही है वरन् रुचि-परिष्कार भी प्रतीत होता है। शॉ, गाल्संवर्दी, यीट्स आदि लेखको ने इस दिशा मे युग प्रवर्तक का कार्य किया है। शॉ के 'दि मैन ऑव डेस्टिनी', 'डार्क लेडी ऑव दि सौनेट्स', 'राइडर्स टु सी' उत्तम एकाकियो के उदाहरण है।

आधुनिक हिन्दी एकाकी का शिल्प पक्ष अवश्य पश्चिम से प्रभावित प्रतीत होता है। हिन्दी एकाकी पर इन्ही उपर्युक्त विद्वानो का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। हिन्दी नाटक की नयी विधा के रूप मे हिन्दी एकाकी ने लड़खडाते कदमो से चलना सीखा था, पर आज वह इतना आगे बढ गया है कि उसने अन्य विधाओ को पीछे छोड दिया है और आज वह हिन्दी आलोचको, पाठको का लोकप्रिय विषय बन गया है।

हिन्दी एकाकी का विकास

आधुनिक साहित्य की भाँति हिन्दी एकाकी का उदय भी भारतेन्दु-युग मे ही हो चुका था। साहित्य की अन्य विधाओ की भाँति भारतेन्दु ने ही हिन्दी एकाकी को जन्म दिया। पिछले कुछ वर्षों मे हिन्दी के गर्भ से जिन एकाकियो का जन्म हुआ वे सस्कृत एकाकी की परम्परा मे लिखे गये है, किन्तु बाद मे एकाकी के शिल्प पक्ष मे परिवर्तन हुआ है जो पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित है।

भारतेन्दु के एकाकियो मे ही हिन्दी एकाकी की प्रथम दशा दिखायी देती है। ये नाटक सस्कृत एकाकी-परपरा के अनुकरण मे लिखे गये हैं जिनमे 'वैदिकी हिसा हिसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम्', 'अन्धेर नगरी' और 'धनजय विजय' प्रमुख है। भारतेन्दु ने मौलिक एकाकियो—'प्रेमयोगिनी', 'माधुरी', 'नीलदेवी'— के साथ-साथ बगला और सस्कृत नाटको के अनुवाद भी किये। भारतेन्दु के अतिरिक्त इस युग के अन्य प्रमुख एकाकीकारो मे श्रीनिवास दास का 'प्रह्लाद चरित', राधाचरण गोस्वामी के 'श्रीदामा नाटक' और 'सती चन्द्रावली', प्रतापनारायण मिश्र का 'कलिकौतुक', देवकीनदन त्रिपाठी का 'जय नारासिह की', राधाकृष्णदास का 'दु खिनी बाला' आदि से भारतेन्दुकालीन एकाकी के स्वरूप और स्वभाव का परिचय मिलता है। इनमे अधिकाश सामाजिक और धार्मिक विषयो को लेकर लिखे गये हैं। इस समय के एकाकी लेखको मे अयोध्यासिह उपाध्याय और प अम्बिकादत्त व्यास का नाम भी उल्लेखनीय है।

भारतेन्दुकालीन एकाकियो को विचार और समस्या की दृष्टि से निम्न चार श्रेणियो मे रखा जा सकता है

१ राष्ट्रीय ऐतिहासिक—जैसे 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी'

२ सामाजिक यथार्थवादी—जैसे 'बालविवाह', 'चौपट चपेट' आदि

३ पौराणिक आदर्शवादी—जैसे 'प्रह्लाद-चरित', 'माधुरी' आदि

४ हास्य व्यग्यमय प्रहसन—'वल्लभ कुल दभ दर्पण' और 'हास्यार्णव' आदि।

इस काल की विशेषताएँ प्रमुखतः ये हैं जिनको हम शिल्प सम्बन्धी विशेषताएँ कह सकते हैं - प्रख्यात कथानक वीर और करुण रस का प्राधान्य सामाजिक, धार्मिक त्रुटियों पर व्यंग्य, मनोरंजन। इस काल के एकांकियों पर पारसी रंगमंच का व्यापक प्रभाव रहा है, नांदी, सूत्रधार की विद्यमानता रही मूल समस्या को प्रकट करने वाले वाक्य, दोहे, उद्धरण मुखपृष्ठ पर दिये गये हैं। संकलन-त्रय का अभाव इनमें रहा है और सत्प्रवृत्तियों को निरूपित करना इनका उद्देश्य रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में निबन्ध, लेख, समालोचना, कहानी और गीति-रूपों के प्रति विशेष आकर्षण और नैतिकता की मान्यताओं के कारण एकांकी-कला का विकास अवरुद्ध रहा, पर सन् १९२९ में प्रसाद कृत 'एक घूंट' के प्रकाशन ने एकांकी साहित्य के विकास की दूसरी अवस्था सामने आती है। 'एक घूंट' पात्रों की मनोवैज्ञानिकता, वातावरण की प्रभावशाली सृष्टि, समय और स्थल संकलन का निर्वाह, सुगठित कथा संगठन, घटनागत संघर्ष की उत्तरोत्तर क्षिप्रता, संवाद की स्वाभाविकता, मार्मिकता, भावना के स्पर्श, रचना कौशल आदि अनेक दृष्टियों से अपने पूर्वगामी भारतेन्दु-कालीन रूपक-एकांकियों से नितान्त भिन्न है। प्रसाद ने इसके अतिरिक्त 'सज्जन', 'कल्याणी परिणय' और 'कामना' एकांकी भी लिखे है, किन्तु उनमें कला का कोई नियत रूप लक्षित ही नहीं होता है।

हिन्दी एकांकी के विकास का तीसरा चरण भुवनेश्वर प्रसाद के एकांकी संग्रह 'कारवाँ' से प्रारम्भ होता है। इसका प्रकाशन सन् १९३५ में हुआ और यह एकांकी के क्षेत्र में एक नये रूप में आया, 'कारवाँ' के एकांकियों की कथावस्तु और शैली पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट है। विवाह सम्बन्धी सामाजिक रूढ़ियों पर करारा प्रहार करना ही इस संग्रह का प्रयोजन प्रतीत होता है। इस संग्रह में सामाजिक समस्याओं की बौद्धिक व्याख्या की गयी है।

सन् १९४० के आसपास में हिन्दी एकांकी ने पश्चिम के प्रभाव को बड़ी तेजी से ग्रहण किया है मानो 'कारवाँ' के प्रकाशन से हिन्दी एकांकी को अपना पथ मिल गया हो। 'कारवाँ के बाद कुछ वर्षों तक तो वह प्रभाव उसी गति से आता रहा, किन्तु बाद में धीरे-धीरे मानो हिन्दी

एकाकी की तृषा शमन हुई और पश्चिमी प्रभाव घट-सा गया और आज हिन्दी एकाकी अपने स्वतन्त्र पथ पर चल रहा है।

वर्तमान हिन्दी एकाकी लेखको मे डा रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्द दास, उदयशकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, गणेशप्रसाद द्विवेदी, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर, सद्गुरुशरण अवस्थी, पृथ्वीनाथ शर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, नरेन्द्र शर्मा, उग्र आदि है।

रामकुमार वर्मा के एकाकियो के कई सग्रह मिलते हैं। उनके अनेक अच्छे एकाकी हैं जिनमे 'चपक', 'नही का रहस्य', 'रेशमी टाई', 'बादल की मृत्यु', 'दस मिनट', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'परीक्षा', 'चारुमित्रा', 'रजनी की रात', 'सप्तकिरण', 'रूपरग', 'एक तोला अफीम की कीमत' आदि हैं। डा वर्मा ने प्राय सामाजिक और ऐतिहासिक एकाकियो की रचना की है। इनका आधार प्राय रोमास है। ये एकाकी किसी नैतिक दृष्टिकोण के सहारे आदर्श की ओर झुके हुए प्रतीत होते है। ऐसा प्रतीत होता है मानो चारित्रिक द्वन्द्वो से उत्पन्न मनोवेदना का शमन ही लेखक का मूल उद्देश्य है। रगमचीय दृष्टि से ये सफल हैं और सकलन-त्रय का इनमे पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। डा वर्मा के एकाकियो मे यथार्थवादी दृष्टिकोण का अवसान आदर्शवाद मे होता है।

सेठ गोविन्ददास गाधीवादी विचारधारा के पोषक हैं। इनके एकाकी कुछ तो लघु आकार के हैं और कुछ बडे आकार के। एकाकी जगत् मे भी सेठजी का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। इनके नाटको की मूलभूत समस्याएँ राजनीति, सामाजिक विचार-विन्दुओ से निर्मित है। सेठजी के एकाकी तीव्र अनुभूति एव सबल अभिव्यजना के निकष पर पूरे नही उतरते। अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण, कथोपकथन बडे सजीव और रोचक हैं। इनके प्रसिद्ध एकाकी सग्रहो मे से कुछ ये है—'चतुष्पथ', 'नवरस', 'सप्तरश्मि' आदि।

उदयशकर भट्ट के एकाकी सग्रह 'अभिनव 'एकाकी', और 'स्त्री का हृदय' आदि नामो से प्रकाशित हुए हैं। पहले सग्रह मे 'दुर्गा', 'नेता', 'उन्नीस सौ पैंतीस', 'एक ही कब्र मे' आदि छह एकाकी है। दूसरे सग्रह से 'जवानी', 'नकली और असली', 'दस हजार', 'बडे आदमी की मृत्यु',

'विप की पुडिया' आदि एकाकी है जो उच्चकोटि के है। सामाजिक जीवन की सफल अभिव्यजना भट्टजी के एकाकियो की प्राणशक्ति है। मानसिक सघर्ष की सफल अभिव्यजना भी कुछ एकाकियो मे मिलती है। कथोपकथन कही-कही वडे होने पर भी स्वाभाविक गति और रोचकता से युक्त हैं। भापा पात्रानुकूल तथा अभिव्यक्ति सक्षम है। मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओ के प्रति इनका भी आकर्षण रहा है।

उग्रजी के एकाकियो मे हास्य और विनोद की पर्याप्त सामग्री मिलती है। साहित्यिक उग्रता इनके एकाकियो मे पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। 'अफजल वध', 'भाई मियाँ', 'उजवक', 'राम करे सो होय' आदि इनके श्रेष्ठ एकाकी है। कुछ साहित्यिक प्रश्नो और आर्थिक कठिनाइयो पर उग्रजी ने अपने एकांकियो मे हास्य का समावेश किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के एकाकी भी मध्यवर्ग की समस्याओ के आधार पर निर्मित है। सामाजिक दुर्बलताओ को देखने मे इनकी दृष्टि अधिक तेज हैं। उनका व्यग्यात्मक चित्रण करने मे उनकी लेखनी भी उतनी ही कुशल है। प्रतीत तो ऐसा होता है कि वे समाज के अन्तस् मे प्रवेश करके गवेपणा को पूर्ण सक्षमता से अभिव्यक्त करते हैं। इनके एकाकियो मे रगमचीय गुण भरे पडे हैं। इनके व्यग्य हृदय पर आघात करने वाले और शिष्ट होते है—'देवताओ की छाया मे', 'तूफान से पहले', 'पर्दे के पीछे', 'चरवाहे' आदि अनेक सग्रह निकल चुके है। इनके प्रसिद्ध एकाकियो मे 'लक्ष्मी का स्वागत' 'पापी', 'विवाह के दिन', 'जौंक', 'समझौता', 'स्वर्ग की झलक', 'छठा वेटा', 'अधिकार का रक्षक' आदि एकाकियो के नाम ले सकते हैं।

गणेशप्रसाद द्विवेदी ने सौन्दर्य और प्रेम को एकाकियो का आधार वनाया है। स्त्री-पुरुप का सहज आकर्पण ही इन सवका विपय है। चरित्र-चित्रण के क्षेत्र मे मनोविश्लेषण को वहुत महत्त्व मिला है। इसी के सम्बन्ध से मानसिक सघर्ष का रग भी खूब उभरा है। 'सुहाग-विन्दी', 'दूसरा उपाय ही क्या है', 'सर्वस्व समर्पण', 'वह फिर आयी थी', 'परदे का अपर पार्श्व', 'शर्माजी' और 'कामरेड' आदि अपने एकाकियो मे इन्होने स्त्री-पुरुप के वीच उठने वाले अनेक सहज भावो को अपनी लेखनी से सशक्त वनाकर गरिमा प्रदान की है।

हरिकृष्ण प्रेमी को मध्यकाल से उतना ही मोह रहा है जितना प्रसाद को प्राचीन से। इनके एकाकियों की पीठिका ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक शौर्य, स्वाभिमान और त्याग के चित्रण मे प्रेमीजी को आशातीत सफलता मिली है। राष्ट्रीय प्रेम का, देश भक्ति का स्वर इनके एकाकियो मे मिलता है। इनके एकाकी सग्रह 'बादलो के पार' और 'मदिर' आदि प्रसिद्ध है। 'मानव प्रेम' इनके एकाकियो मे विशेप प्रसिद्धि प्राप्त है। अभिव्यक्ति बडी स्पष्ट है।

प्रसिद्ध एकाकीकारो की पक्ति मे जगदीशचन्द्र माथुर का नाम भी अविस्मरणीय है। इनके एकाकी ऐतिहासिक एव सामाजिक आधारशिला पर निर्मित है, किन्तु पाश्चात्य प्रभाव से मुक्त नही हैं। इनकी समस्याएँ मध्य और उच्चवर्ग से सम्बन्धित हैं। परिस्थितियो के घात-प्रतिघात से बढती हुई कथावस्तु कुतूहल-सकलित बनी रहती हैं। इनके एकाकियो मे 'भोर का तारा', 'रीढ की हड्डी', 'मकडी का जाला', 'खिडकी की राह' आदि प्रसिद्ध है।

श्री विष्णु प्रभाकर ने प्राय सामाजिक ढग के एकाकियो का प्रणयन किया है। इनके एकाकियो मे एक साथ ही सामाजिक समस्याएँ और मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। सामान्यतया इनके एकाकियो को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है १ सामाजिक एकाकी, २ मनोवैज्ञानिक एकाकी।

'बन्धनमुक्त', 'पाप', 'साहस', 'प्रतिशोध', 'वीर-पूजा', 'भाई', 'चन्द्रकिरण' आदि इनके प्रसिद्ध सामाजिक एकाकी है तथा 'उपचेतना का छल', 'क्या वह दोषी था', 'ममता का विप' आदि इनके मनोवैज्ञानिक एकाकी है। अभिनय की दृष्टि से इनके एकाकी सफल है।

इनके अतिरिक्त सुदर्शन, पृथ्वीनाथ शर्मा, सद्गुरुशरण अवस्थी, यशपाल, जैनेद्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भगवतीचरण वर्मा आदि के एकाकी भी एकाकी के विकास मे सहायक सिद्ध हुए हैं। अवस्थीजी के एकाकी पौराणिक कोटि के है। उनकी भाषा मे तीव्रता नही है। पृथ्वीनाथ शर्मा के 'दुविधा' आदि एकाकी पाश्चात्य प्रभाव से युक्त हैं पर इनमे 'कारवाँ' की-सी चुलबुलाहट नही है। सैयाद जहीर ने भी एकाकी का प्रारम्भ तो उज्ज्वल

भविष्य की आशा बँधाते हुए किया था, पर वे राजनीति की ओर अधिक झुक गये है । इससे उनमे अखाडेबाजी का-सा रग आ गया है । भगवती चरण वर्मा के एकाकियो की कला मे काफी निखार है। इनकी भाषा चुस्त और व्यग्य-प्रधान होती है । 'दो कलाकार' और 'ससार का सबसे बडा आदमी' इनकी कला के अच्छे प्रचारक है। इनके अतिरिक्त शम्भूदयाल सक्सेना ने 'प्रहरी' और 'सोने की मूर्ति' का सृजन कर एकाकी क्षेत्र मे नाम कमाया है ।

इससे स्पष्ट है कि आज एकाकी हिन्दी साहित्य मे वडे वेग से दौड रहा है और इस दौड मे हमारे आधुनिक और अत्याधुनिक एकाकीकार भी बड़ा सहयोग दे रहे हैं ।

,

एकाकी, एकाकीकारो का परिचय

डा रामकुमार वर्मा

डा वर्मा की जन्मभूमि मध्य प्रदेश है। कई वर्षों से आप प्रयाग विश्वविद्यालय मे हिन्दी साहित्य के प्राध्यापक है। आपने अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ, कविताएँ, नाटक तथा एकाकी लिखे हैं। हिन्दी एकाकी को उसके शिखर तक ले जाने का श्रेय डा वर्मा को ही है। आपका रगमच से निकट का सम्बन्ध रहा है। इनके एकाकियो के कई सग्रह उपलब्ध होते हैं। इनके कुछ प्रसिद्ध एकाकी ये है—'चपक', 'एक्ट्रेस', 'नहो का रहस्य', 'बादल की मृत्यु', 'दस मिनट', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'परीक्षा', 'रूप की बीमारी', 'चारुमित्रा', 'रेशमी टाई', 'सप्तकिरण', 'रूप-रग', 'एक तोले अफीम की कीमत', 'रजनी की रात' आदि।

डा वर्मा ने प्राय सामाजिक और ऐतिहासिक एकाकियो की रचना की है। वैसे मानव-मन के अतिरिक्त जगत् का मनोवैज्ञानिक विश्लेपण आपकी कला की विशेपता है। यह सौन्दर्य का कलाकार अपनी समर्थ तूलिका से पात्रो के चरित्र-चित्रण मे द्वन्द्व-अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि करता हुआ अपनी कवित्वमयी मधुर भापा से सजीव प्रतिमा का निर्माण करता है। इनके सभी एकाकी प्राय रगमच की शोभा बने हैं। इनके एकाकियो का बाह्य रूप पश्चिमी होते हुए भी अन्तर भारतीयता से ओत-प्रोत है।

प्रस्तुत एकाकी 'एक तोले अफीम की कीमत' मनोविश्लेषण की पद्धति का द्योतक है। दो पात्र जो आत्महत्या करने को उत्सुक हैं, उनकी मनोदशा का चित्र इस एकाकी मे मिलता है, पर अन्त मे दोनो ही रास्ते पर आ जाते हैं। एक ओर तो इसमे यह मनोवैज्ञानिक चित्र है दूसरी ओर सामाजिक कुरीतियो पर व्यग्य है। मुरारी मोहन और विश्वमोहिनी का पारस्परिक वार्तालाप बडा मधुर और मनोवैज्ञानिक है। भाषा चटपटी

और विनोदात्मक है। चरित्र-चित्रण, वार्तालाप और भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक सफल एकाकी है। टेकनीक की दृष्टि से भी यह बडा श्रेष्ठ एकाकी है। हमारे नवयुवक किस प्रकार भावावेश मे आकर आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध को करने के लिए तुल जाते है, यह इस एकाकी मे मिलेगा।

उदयशंकर भट्ट

हिन्दी एकाकीकारो मे भट्टजी का प्रमुख स्थान है। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। इन्होने हमारे साहित्य के सभी अगो को स्पर्श किया है। ये मधुर गीतकार, सुन्दर कवि, सफल उपन्यासकार, कहानी लेखक तथा प्रसिद्ध नाटककार तथा एकाकीकार हैं। 'अभिनव एकाकी', 'स्त्री का हृदय', 'समस्याओ का अन्त', 'चार एकाकी' आदि नामो से इनके कई एकाकी सग्रह निकले हैं। इनके एकाकियो मे कठोर अनुभूति से उत्पन्न हुई वेदना मिलती है। उनमे जीवन की उथल-पुथल और मन को छूने की विधि का अपूर्व समन्वय है। इनके एकाकियो मे एक ओर मानसिक संघर्ष की व्यजना वडी कुशलता और सफलता से की गयी है तो दूसरी ओर वर्तमान समाज की समस्याओ पर व्यग्य हैं।

प्रस्तुत एकाकी 'पर्दे के पीछे' भट्टजी का श्रेष्ठ एकाकी है। यह एक सामाजिक व्यग्य है। इस एकाकी मे यह दिखाया गया है कि हमारे आज के जीवन मे 'पर्दे के पीछे' क्या व्यापार चलता है। हमारे आदर्शवाद, त्याग, तपस्या के पीछे कितनी प्रवचना है। हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा की नीव कितनी पोली है। इतना ही नही, हमारे समाज मे आदर्श और सच्चाई के नाम पर जो भी जघन्य कार्य चलते है उन सबका कच्चा चिट्ठा इस एकाकी मे प्रस्तुत है। एकाकी की भाषा पात्रानुकूल तथा अभिव्यक्ति सक्षम है। कथोपकथन कहीं-कही वडे होने पर भी स्वाभाविक गतिमयता एव रोचकता के लिए प्रशस्त हैं। शैली प्रभावोत्पादक और व्यग्यात्मक है जिससे एकाकी मे एक नया रस आ गया है। पात्रो के मनोभावो की अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने वडी पात्रानुकूल भाषा और उचित शब्दावली का प्रयोग किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

अश्क मँजे हुए एकाकीकार एव कहानी लेखक है। अश्कजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आपने जहाँ एक ओर अच्छे नाटको की सृष्टि की है वही दूसरी ओर अच्छे एकाकी भी हिन्दी एकाकी-जगत् को दिये है। सामाजिक दुर्बलताओ को देखने म इनकी दृष्टि जितनी तेज है उनका व्यग्यात्मक चित्रण करने मे इनकी लेखनी भी उतनी ही सशक्त है। ऐसा विदित होता है कि समाज के अन्तस् मे प्रवेश करके वे गवेषणा को पूर्ण सक्षमता से अभिव्यक्त करते है। अश्कजी के एकाकी रगमचीय गुणो से युक्त है। इन्होने कुछ रेडियो प्ले भी लिखे है और श्रेष्ठ नाटक भी जिससे इनके नाटक और एकाकियो मे अभिनय गुण बढता ही गया है। इनके एकाकी सग्रह 'तूफान से पहले', 'चरवाहा', 'देवताओ की छाया मे' आदि है। इनके प्रसिद्ध एकाकी 'लक्ष्मी का स्वागत', 'चमत्कार', 'पापी' आदि है।

प्रस्तुत एकाकी 'लक्ष्मी का स्वागत' विषाद का गहरा भाव लिये हुए है। बडी ग्लानि और कडवाहट इस एकाकी मे नियोजित है। भारतीय गृहस्थ जीवन के प्रति इस एकाकी मे एक करारा व्यग्य है। एक पत्नी की मृत्यु हुई नही कि घर वाले अपने लडके के लिए दूसरी लडकी की खोज मे लग जाते हैं, पर उन्हे दूसरी बहू की भी उतनी चिन्ता नही होती है जितनी कि धन-दौलत की, जो उन्हे दहेज-स्वरूप प्राप्त होने वाली है। यही हमारे समाज का वह रूप है जिसकी ओर लेखक ने करारा व्यग्य किया है। नाटक के वायुमण्डल मे निरन्तर बादलो की गडगडाहट और बिजली की चमक है। भारी, छिपी शक्ति का भान इस नाटक के वातावरण मे होता है। वस्तुत अश्क की लेखनी ने गहराई मे प्रवेश करके यह चित्र खीचा है। भाषा बडी मजी हुई और चुस्त है। कथोपकथनो मे प्रवाह और गतिमयता है। वे पात्रों के चरित्र के प्रकाशक हैं। 'लक्ष्मी का स्वागत' एकाकी अनेक बार सफलतापूर्वक खेला गया है।

सेठ गोविन्ददास

सेठजी के व्यक्तित्व मे राजनीति और साहित्य का सुन्दर सम्मिश्रण

है। आपने एकांकी तथा नाटक दोनों लिखे हैं। आपके एकांकियों का विषय अधिकतर सामाजिक होता है। इनका आधार बंगाली समाज की किसी विशेष प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। इनकी एकांकी कुतूहल-पूर्ण होकर भी रोचक नहीं है। पात्रों के चरित्र की मनोवैज्ञानिकता भी प्रायः विचार-शुद्धि के लिए ही प्रदर्शित और चित्रित की गयी है।

आधुनिक अंग्रेजी लेखकों का प्रभाव इनके साहित्य पर होने से एकांकियों में भी आ गया है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं— 'दिव्य प्रेम', 'कर्तव्य', 'सेवा पथ', 'दुर्भावना', 'सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य', 'स्पर्धा' और 'मानव-मन'।

'मानव-मन' शीर्षक से लिखे गये एकांकी में मानव-मन की विचित्रताओं का विश्लेषण है। मन का मूलभूत स्वाभाविक प्रवाह आदर्श की कठोर शिला से टकराता है, दोनों में संघर्ष होता है और अन्ततोगत्वा मन की सहज प्रवृत्ति कठोर शिला का उच्छेदन कर अपनी गति ढूंढ लेती है। आदर्श के ऊपर मूलप्रवृत्ति (instinct) की विजय दिखायी गयी है जो उचित है, क्योंकि आदर्श तो बाह्य है, कृत्रिम है। जो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है उसका उपयोग स्वाभाविक भी है। यही इस एकांकी का विषय है।

मानवी की नायिका सच्चा पतिपरायणा नारी है। उसका आदर्श पति-सेवा है जिसके लिए वह अपना सर्वस्व निछावर कर सकती है। उसकी भाभी अपने पति बृजमोहन की बीमारी में दो वर्ष तक सेवा और तपस्या का कठिन जीवन व्यतीत करती है, किन्तु रोग की असाध्यता उसके धैर्य को तोड़ देती है। उसकी सहनशक्ति शिथिल होती है और मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार वह पुनः भोगमय जीवन बिताती है। वह रेशमी ब्लाउज और रत्नजटित आभूषण धारण कर लेती है। अन्त में लेखक भारती के मुँह से मानव-मन की प्रवृत्ति बताकर एकाकी को अन्त की ओर ले जाता है।

हरिकृष्ण प्रेमी

हरिकृष्ण प्रेमी का जन्म-स्थान मुरार (ग्वालियर) है। अजमेर से प्रकाशित होने वाली 'त्याग भूमि' के संपादक-मण्डल में सम्मिलित होकर

आपने साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश किया। प्रेमीजी सर्वप्रथम कवि हैं और उसके वाद नाटककार। आपने कई उच्चकोटि के वडे नाटक लिखे है। वाद मे इन्होने एकाकी नाटक भी लिखने आरम्भ किये है। इनके एकाकी प्राय सामाजिक और ऐतिहासिक हैं। इनमे दो प्रकार की विचार-धाराएँ सर्वत्र मिलती है—एक तो राष्ट्रीय नव-निर्माण और दूसरे नैतिक आदर्शवाद। प्रत्येक एकाकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा करता है।

राष्ट्रीय नव-निर्माण के निमित्त जहाँ एक ओर आपने राजपूतो के ऐतिहासिक गौरव, अमर वलिदान, मान रक्षा को प्रतिष्ठित किया है वही पर कुछ एकाकियो मे राष्ट्र प्रेम और स्वदेश प्रेम की भावना को अकित किया है। प्रेमीजी ने अपने एकाकियो मे जिन समस्याओ को प्राथमिकता दी है उनमे सामाजिक और राष्ट्रीय प्रमुख है। सामाजिक समस्याओ के अन्तर्गत विधवा विवाह, हिन्दू समाज, जाति प्रथा, साहित्यिको की निर्धनता, आधुनिक शिक्षा मे ढली और पली नारियो की स्वच्छन्द्य-प्रियता, झूठा वैभव, पुरुषो की कठोरता, किताबी शिक्षा की हानियाँ आदि चित्रित हैं।

प्रस्तुत एकाकी 'मालव-प्रेम' प्रेमीजी का एक प्रसिद्ध एकाकी है जिसमे राष्ट्र प्रेम ने व्यक्ति प्रेम पर विजय पायी है। प्रिया ने प्रियतम को अपने कोमल और स्निग्ध स्नेह-सूत्र मे बाँधकर देशद्रोह के पाप कुण्ड मे गिरने से बचा लिया है। नारी केवल वासना की कठपुतली नही, त्याग की भी पावन प्रतिमा है। 'मालव प्रेम' मे एक ऐसी ही नारी का चित्र है जो राष्ट्र प्रेम की भावनाओ से युक्त है और जो राष्ट्र प्रेम के निमित्त अपने प्रियतम को भी होम कर देती है। इस एकाकी मे व्यक्ति प्रेम और राष्ट्र प्रेम का जो सघर्ष चित्रित है वह अपने आप मे अनूठा है। कथोप-कथन और शैली वडी भव्य और आकर्षक है।

जगदीशचन्द्र माथुर

जगदीशचन्द्र माथुर का जन्म १६ जुलाई, सन् १९१७ को हुआ था। इन दिनो आप ऑल इण्डिया रेडियो के डाइरेक्टर जनरल है। आपने नाटक और एकाकी दोनो ही लिखे है। सर्वप्रथम इनका नाटक सन् १९३६

मे प्रकाशित हुआ जिसका नाम 'मेरी बाँसुरी' है। इन्होने उसके बाद अनेक एकाकी लिखे है जिसमे से कुछ तो सामाजिक है और कुछ ऐतिहासिक। अभिनय-कला के विशेषज्ञ होने से इन्होंने एकाकी को एक नयी राह दी है। ये पाश्चात्य टेकनीक के आधार पर एकाकी साहित्य का प्रणयन कर रहे है।

माथुर जी ने गम्भीर और विचार-प्रधान एकाकी लिखने के साथ व्यग्य-विद्रूप से परिपूर्ण हलके-फुलके एकाकी लिखकर हिन्दी मे नाटक की नवीन दिशा की ओर सकेत किया है। 'ओ मेरे सपने' शीर्षक से लिखे सकलन मे माथुर साहब के पाँच एकाकी सगृहीत हैं जिनमे उद्देश्य के प्रति लेखक का कोई आग्रह नही है। हाँ, मनोरजन की गहरी छाप विद्यमान है। भाषा और शैली की दृष्टि से भी श्री माथुर के एकाकी पूर्ण सफल है।

प्रस्तुत एकाकी 'भोर का तारा' माथुर साहब का एक श्रेष्ठ एकाकी है-जिसमे कवि शेखर के द्वारा कर्त्तव्य के लिए प्रेम का वलिदान करना व्यजित है। इसकी सूचना प्रथम दृश्य मे होने वाले सौन्दर्य तथा कर्त्तव्य सम्वन्धी मवाद मे ही दे दी जाती है। प्रारम्भ मे प्रभात द्वारा रजनी वाला के खीचे हुए पट के छोर मे स्वर्ण कण की भाँति टँके हुए भोर के तारे की कल्पना की गयी है जो किसी पूर्व और भावी परिस्थिति का सकेत कर जाती है। कवि शेखर के एकाकी गायन मे माधव का आगमन, प्रेम और सौन्दर्य की चर्चा के बीच एक भिखमगी का प्रसग, स्कंदगुप्त के दरवार मे युवती के गायन, राजा से शेखर के बुलाने की उसकी प्रार्थना, समुद्र के सकेत, दूसरे दृश्य मे वीरभद्र का विद्रोह, तोरमाण के आक्रमण की सूचना, देवदत्त की वीरगति का सदेश, काव्य शक्ति से जन-जीवन की रक्षार्थ शेखर को प्रेरित करने का प्रयत्न—सभी कुछ कथा मे नया सघर्ष उत्पन्न करते है और कथा अपने लक्ष्य—शेखर अव तक भोर का तारा था अव वह प्रभात का सूर्य होगा—को प्राप्त कर लेती है। भाषा वडी मार्मिक और काव्यात्मक वन गयी है। कथोपकथन बडे सजीव है। दो दृश्यो मे प्रस्तुत यह एकाकी अपने भाव पक्ष में जितना उदात्त है अपने कला पक्ष मे उतना ही सशक्त।

भुवनेश्वर

भुवनेश्वर का हिन्दी एकाकी के विकास मे महत्त्वपूर्ण योग है। इनका प्रसिद्ध एकाकी सग्रह 'कारवाँ' सन् १९३५ मे प्रकाशित हुआ। यह सग्रह एकाकी के नये प्रयोग के रूप मे आया है। यही से वस्तुत एकाकी को एक नयी दिशा और एक नयी राह मिलती है। 'कारवाँ' के एकाकियो की वस्तु और शैली पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। विवाह-सम्बन्धी सामाजिक रूढियो पर कराग प्रहार करना ही इन एकाकियो का प्रतिपाद्य विपय है। भारतीय रूढियो के विरोध मे पश्चिम के प्रगतिशील नैतिक मूल्यो की स्थापना इन एकाकियो का लक्ष्य है, अत इनमे सामाजिक समस्याओ की बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत है।

भारतीय मध्य वर्ग की नैतिकता के ढोगी आवरण को इन नाटको मे बडी स्पष्टता से छिन्न किया गया है। प्रस्तुत एकाकी 'स्ट्राइक' इनका प्रसिद्ध एकाकी है। पति और पत्नी की विषम सवेदना के माध्यम से इस एकाकी मे पुरुप और स्त्री की चारित्रिक विशेपताओ पर प्रकाश डाला गया है। पुरुपो का सवाद नाटक के सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन करने मे सफल सिद्ध होता है। स्त्री चरित्र के अन्तस् की गूढ और गम्भीर भावनाओ को इसमे प्रकट किया गया है। युवक का व्यग्य इस चरम सीमा का स्पर्श करता है—"आइए, मेरे होटल मे आइए आपकी फैक्टरी मे तो आज स्ट्राइक है।" मध्यवर्गीय समाज की घटना को उठाकर सवादो द्वारा उसके यथार्थ के उद्घाटन मे यह एकाकी पूर्ण सफल हुआ है। यह एकाकी यदि एकाकीकार की कला का प्रतिनिधि एकाकी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। भापा पात्रानुकूल है और सवादो मे गति है, स्थिरता नहीं।

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा कविता, कहानी, उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त समझे जाते है। 'मधुकण', 'प्रेमसगीत', 'एक दिन' आदि आपकी काव्य पुस्तकें हैं। 'चित्रलेखा' और 'तीन वर्ष' अच्छे उपन्यास हैं। 'इन्स्टालमेन्ट' आपका सुन्दर, सफल कहानी सग्रह है।

एकांकी क्षेत्र में आपका प्रयत्न सराहनीय रहा है। 'सबसे बड़ा आदमी' और 'मैं और केवल मैं' आपके प्रसिद्ध एकांकी है। आदर्श और यथार्थ का संघर्ष आप बड़ी कुशलता से चित्रित करते है।

प्रस्तुत एकांकी 'मैं और केवल मैं' मे लेखक ने मानव के स्वार्थ का यथार्थ चित्र खींचा है। आज की दुनिया मे अपनी सुख, समृद्धि मे तल्लीन पुरुष को दूसरो के दर्द की बाते सुनना तो दूर सोचने का भी अवकाश नही है। सहानुभूति दिवालिया हो गयी है और सहयोग दुम दबाकर भाग गया है, इसलिए सहानुभूति भी कृत्रिम हो गयी है। वह सर्वथा वाचिक है। एकांकी के प्राय सभी पात्र स्वार्थी संसार के प्राणी हैं। रामेश्वर भावुक और आदर्शवादी है। रामेश्वर के दुःख मे उसके साथी उसके साथ मौखिक सहानुभूति प्रगट करने की भी परवाह नही करते हैं। उसके विपरीत उसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए जनता के विरुद्ध टॉमसन के पास भेजना चाहते हैं। परमानंद उनके स्वार्थ का शिकार बन जाता है, परन्तु उसकी विपत्ति मे उनमे से कोई भी उसकी सहायता के लिए तत्पर नही है। दूसरो को दुःखी करके अपने सुख-संपादन को ही वे मानवता का मूल-मंत्र मानते हैं।

'मैं और केवल मैं' मे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से संसार की कठोर निर्ममता के प्रति अत्याचार और स्वार्थ प्रवचना के विरुद्ध कटु बाते कही गयी हैं। उसमे सहानुभूति कहीं नही, यदि है भी तो निम्नस्तरीय वर्ग मे। महँगू चपरासी सहानुभूति का प्रतीक है। यद्यपि कथानक मे कुतूहल का अभाव है फिर भी कथावस्तु मे शैथिल्य नही। भाषा प्रवाहयुक्त, स्वाभाविक तथा मुहावरेदार है। कही-कही आवेशपूर्ण संभाषण मे कवित्व की छाया भी वर्तमान है।

विष्णु प्रभाकर

विष्णु प्रभाकर पुराने कथाकार हैं। पहला नाटक 'हत्या के बाद' १९३९ मे लिखा। अश्क के शब्दो मे "इधर आपकी कला मे अभूतपूर्व निखार आ गया है। यथार्थ की अपेक्षा आप आदर्शोन्मुख हैं। मानव प्रवृत्तियो का विश्लेषण करके उनमे आध्यात्मिक पुट देना आपकी अपनी विशेषता है।" भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। शैली मे गति और

चुस्ती है। रेडियो नाटक के क्षेत्र मे आपको विशेष सफलता मिली है।

श्री विष्णु प्रभाकर के एकांकियो को छह वर्गों मे बाँटा जा सकता है—१ सामाजिक समस्या एकाकी, २ मनोवैज्ञानिक एकाकी, ३ राजनीतिक एकाकी जिनमे राष्ट्रीय गौरव के चित्र चित्रित है, ४ हास्य-व्यग्य प्रधान एकाकी, ५ पौराणिक, ऐतिहासिक एकाकी, ६ प्रचारात्मक एकाकी जिनमे देश की आर्थिक, सामाजिक और विशेषत गाधीवादी विचारधारा का चित्रण है।

प्रस्तुत एकाकी 'विभाजन' मे पारिवारिक जीवन का सफल चित्र है जो आत्मोत्सर्ग, प्रेम और करुणा का वाहक है। मानव सम्पत्ति या धन दौलत का विभाजन तो कर सकता है, पर हृदय-दुनिया पर विभाजन रेखा खीचना सभव नही है। भाई-भाई, पिता या बाप-दादे की सम्पत्ति विभाज्य है, पर देवर-भाभी की आन्तरिक स्नेह की ग्रथियाँ अविभाज्य हैं। उनकी हृदय वेदना आँखो मे छलक ही आयी।

कथोपकथन बडे सजीव, सक्षिप्त और प्रभावोत्पादक हैं। उनकी भाषा भी माधुर्य से पूर्ण है। उदाहरणस्वरूप

देवराज—भाभी ! कल पहली तारीख है। महेश को रुपये भेजने हैं, वही लाया हूँ।

भगवती—महेश को तो रुपये मैं भेज चुकी !

देवराज—परन्तु आधे रुपये तो मैं देता हूँ।

आदि कथोपकथन बडे प्रभावशाली और युक्तियुक्त है। भाषा सरल और मधुर है। उसमे सरलता का गुण पाठको को मोह लेता है।

जयनाथ नलिन

जयनाथ नलिन का जन्म सन् १९१२ मे हुआ था। प्रारभ से ही आपका जीवन साहित्यिक स्पर्श से युक्त रहा। सन् १९३५ से इन्होंने पत्रकार के रूप मे कार्य किया। तदनन्तर कुछ दिनो लाहौर और दिल्ली के अनेक दैनिक पत्रो का सपादन करते रहे। कुछ दिनो फिल्मी दुनिया का अनुभव प्राप्त कर अध्यापन क्षेत्र मे आये है।

नलिनजी ने अनेक आलोचनात्मक निबध लिखे हैं। आचार्य शुक्लजी

के ऊपर आलोचना लिखी है। इनकी अनेक रचनाएँ अब तक प्रकाश मे आ चुकी हैं जैसे---'धरती के बाल', 'हाथी के दाँत', 'टीलो की चमक', 'जवानी का नशा' आदि। भाषा-शैली मे हास्य-व्यग्य का पुट वर्तमान रहता है इसलिए हास्य-व्यग्य लेखको मे आपका अपना स्थान है। इन्हे गुजराती, मराठी, बँगला, अग्रेजी आदि का भी अच्छा ज्ञान है।

प्रस्तुत एकाकी 'सवेदना-सदन' अपने ढग का एकाकी है जिसमे एक ओर व्यग्य प्रवृत्ति प्रधान हो उठी है तो दूसरी ओर हास्य की प्रवृत्ति। 'सवेदना-मदन' शीर्षक ही अपने आप मे हास्य-व्यग्य की सृष्टि करता है। इसमे बताया गया है कि शोक मनाने के लिए मडलियाँ होती है जो पैसे लेकर शोक करती है, रोती हैं। 'सवेदना-सदन' एक ऐसा ही एकाकी है। इसी शोक-मदन मे व्यग्य भी बडा करारा किया गया है जैसे—

"करुणा—हिश् पगली! गजा नही, चाहे अन्धा हो, काना हो, ऐंचाताना हो, पर कहना यही, कमलनैन कटार-सी आँखें और नरगिस की आँखें, गुण-गान ही किया जाता है, इससे शोक मे सघनता आ जाती है। मरने वाले का मूल्य भी बढ जाता है।"

और हास्य—"रोने की सैंकडो शैलियाँ है, अनेक प्रकार है, अनगिनत राग-रागनियाँ। कभी दर्दीले, कभी तराने, कभी शोक के गाने·· ······ मैं तो सच, बहनजी, इतनी वैरायटी उपस्थित करूँ कि बडे-बडे सगीताचार्य भी बगले झाँकने लगें।"

भाषा मधुर, हास्य-व्यग्यपूर्ण शैली और कथोपकथन चुभते और गुदगुदाते हुए हैं। भाषा मे अग्रेजी शब्दो का भी प्रयोग किया गया है।

एक तोले अफीम की कीमत

डा. रामकुमार वर्मा

पात्र

मुरारी मोहन बी ए.	नये विचारो का नवयुवक, लाला सीताराम का पुत्र
लाला सीताराम	अफीम के व्यापारी
कुमारी विश्वमोहिनी	एनी बेसेंट कालेज मे सेकण्ड ईयर की छात्रा
रामदीन	लाला सीताराम का नौकर
जोखू	चौकीदार

[समय—रात के दस बजे के बाद । लाला सीताराम की दुकान मे एक सजा हुआ कमरा। एक बड़ा टेबुल, जिस पर कागज, कलम, दवात आदि सुसज्जित हैं। टेबुल के आस पास दो-तीन कुर्सियाँ रखी हुई हैं। बगल मे एक बेंच जिस पर कार्पेट बिछा हुआ है। दीवाल पर दो-तीन फोटो लगे हुए हैं, जिनमे एक मकान के मालिक सीताराम का और दूसरा उनकी पत्नी का है, जो अब इस ससार मे नहीं हैं। तथा दोनो के बीच मे श्री लक्ष्मीजी का चित्र लगा हुआ है। दाहिनी ओर एक साइनबोर्ड है, जिसमे 'लाला सीताराम—अफीम के व्यापारी' लिखा हुआ है। दीवाल पर कुछ ऊँचाई से एक क्लॉक टँगा हुआ है जिसमे दस बजकर पन्द्रह मिनट हुए हैं। क्लॉक के बगल मे एक कैलेंडर है।

मुरारी मोहन लाला सीताराम का लड़का है—नये विचारो मे पूर्ण रीति से रगा हुआ। वह इसी वर्ष बी ए पास हुआ है। उम्र २१ वर्ष, देखने मे सुन्दर। साफ कमीज और धोती पहने हुए है। टेबुल पर बिखरे हुए कागज ठीक करने के बाद वह कुर्सी पर बैठकर अखबार देख रहा है। चिन्ता की गहरी रेखाएँ उसके मुख पर देखी जा सकती हैं। वह किसी समस्या के सुलझाने मे व्यस्त मालूम देता है। दो-एक बार अखबार से नजर उठाकर दीवाल की ओर शून्य मे देखने लगता है।]

मुरारी मोहन—[एक क्षण अखबार की ओर देखकर पुकारते हुए] रामदीन !

रामदीन—[बाहर से] सरकार !

[रामदीन का प्रवेश । घुटने तक धोती, गजी और पगडी पहने हुए है। बातूनी है लेकिन है समझदार। आकर नम्रता से खडा हो जाता है।]

मुरारी मोहन—रामदीन ! बाबूजी जाते वक्त कुछ कह गये हैं ?

रामदीन—[हाथ जोडकर] कोई खास बात नही सरकार ! कहत रहे कि मुरारी भैया को देखते रहना। तकलीफ न हो, नही तो रामदीन तुम जानो—ऐसन कहत रहे सरकार !

मुरारी मोहन—[लापरवाही से] ऐसा कहा ? [हँसकर] हँअ्, मुझे क्या तकलीफ होगी रामदीन ? कब आने को कहा है ?

रामदीन—सरकार, परसो साम के कहा है। बहुत जरूरी काम है, नाही तो काहे जाते सरकार ?

मुरारी मोहन—परसो आएँगे ? कौन तारीख है ? [कैलेंडर की ओर देखता है] १५ जुलाई ! [ठडी साँस लेकर] खैर !

रामदीन—[मुरारी को चिन्तित देखकर] सरकार, जल्दी काम खतम हो जाय तो जल्दी आय जायँ। कोई बात है सरकार ?

मुरारी मोहन—[लापरवाही से] कोई बात नही। बाबूजी गये किस लिए हैं, तुम्हे मालूम है ?

रामदीन—[हाथ झुलाकर] ए लो सरकार, आप लोग न जानें ? हम गरीब मनई सरकार के काम को का समझें ? हाँ, कहत रहे कि अफीम अब बढाय गई है। गाजीपुर से नवा कारबार चालू भवा है। येही बदे जाना पड गवा।

मुरारी मोहन—मुझसे तो बातें ही न हो सकी। मैं समझा, किसी से कुछ तय करने के लिए गये है। मेरी आजकल कुछ ज्यादा फिकर मालूम होती है।

रामदीन—काहे न होय सरकार ? अब आपै तो है और कौन है, सरकार !

मुरारी मोहन—अच्छा [घडी की ओर देखकर] रामदीन ! अब जाओ तुम। दस बज चुके।

रामदीन—सरकार हमका तो हुकुम है कि—यही दूकान मे सोना। सरकार!

मुरारी मोहन—नही जी, तुम घर जाओ। मै तो हूँ। मैं कोई बच्चा नही हूँ। मैं अकेला ही सोऊँगा। किसी का डर है क्या? और फिर चौकीदार तो है ही?

रामदीन—सरकार, नाराज होअँगे, सरकार,'मैं भी यही पड रहौगा।

मुरारी मोहन—क्यो क्या तुम्हारे घर मे कोई नही है?

रामदीन—है काहे नाही सरकार! तेजी है, तेजी कै माँ है। ओकरे तबियत सरकार, कल्हि से कछु दिक है।

मुरारी मोहन—तब तो तुमको जाना चाहिए।

रामदीन—हाँ सरकार, बहुत दिक है। मुदा बडे सरकार नाराज...

मुरारी मोहन—नही, मैं कह दूंगा! यह क्या बात कि घर मे लोग बीमार हो और तुम यही पडे रहो।

रामदीन—[हाथ जोड़कर] वाह सरकार, आप दीन-दयालू है। काहे न होय सरकार? आप तो दीन की परवस्ती..

मुरारी मोहन—खैर, यह कोई बात नहीं।

रामदीन—[हाथ जोडकर] तो सरकार मैं [रुककर] जावँ..?

मुरारी मोहन—हाँ, सुबह जरा जल्दी आ जाना।

रामदीन—बहुत अच्छा, सरकार! सरकार की का बात!

[रामदीन अपना बिस्तरा उठाकर जाने को तैयार होता है।]

मुरारी मोहन—[सोचता हुआ] क्यो जी रामदीन, तुम्हारी शादी कब हुई थी?

रामदीन—[संकुचित होते हुए] हँ, हँ, सरकार सादी? तेजी कै माँ की शादी? सरकार, जमाना गुजर गवा। [बिस्तरा जमीन पर रखता हुआ] अब तौ तेजी कै सादी कै फिकर है। सरकार, आपई करेगे। [दाँत निकालता है]।

मुरारी मोहन—अच्छा, बहुत दिन बीत गये! और रामदीन, तुमने शादी के पहले तेजी की माँ को देखा तो होगा?

रामदीन—राम कहो, सरकार, हम तो उहि का तब जाना जब तेजी का जनम होय का वखत आवा। सरकार, भरे घर मां कौन केका देखत है ? माँ-बाप सब्बै तो रहैं। जब लो तेजी कै माँ से मुलाकात का वखत आवै तब लौ घर मे अधियार होय जात रहा। और सरकार, आपन मेहरिया का मुंह देखै सै का ? देखा तो ठीक, न देखा तो ठीक। जब ऊ का अपनाय लिहिन तब सरकार, भली-बुरी सब्बै ठीक है। है, है !

[नम्रता और हास्य का मिश्रण]

मुरारी मोहन—बडा ज्ञानी है। और ये शादी लगायी किसने थी ?

रामदीन—अब सरकार, बापै लगाइन, हमार काहे माँ गिनती ? ऊ हमसे कहवाइन—सब ठीक है। हमहूँ आपन मुडिया हलाय दिहिन। सादी कै बात तो सरकार बापै के हाथ मे रहा चाही। ऊ कहिन कै रामदीन कै सादी होई हम समझा ठीक है। तो शादी न करत ? सरकार !

मुरारी मोहन—तुम लोग क्या समझो कि शादी किसे कहते है ?

रामदीन—सरकार, आप लोग पढे-लिखे हन। अब आप न जानी तौ का हम जानी ? हमार सादी तो सरकार, गुजर-बसर के लायक है। आप लोगन की सरकार रुजगार जैसन सादी होवत है। अब तो सरकारो की सादी होई। हाँ। [सिर हिलाता है]

मुरारी मोहन—[दृढ़ता से] मेरी शादी नही होगी रामदीन अच्छा अब जाओ तुम।

रामदीन—काहे न होई सरकार !

मुरारी मोहन—कुछ नही, तुम जाओ।

रामदीन—सरकार कै सादी तो अस होई कि सगर दुनिया तरफराय जाई। अच्छा तो सरकार जाई नू ? राम-राम ! [कमरे मे लगी हुई लक्ष्मी जी की तसवीर को भी प्रणाम करके जाता है।]

मुरारी मोहन—[व्यग से] बडा भगत है।

[रामदीन के जाने पर मुरारी मोहन कुछ क्षणो तक दरवाजे की ओर देखता हुआ बैठा रहता है। फिर उठकर दरवाजा ऊपर से और एक क्षण खड़े रहकर सोचते हुए नीचे से भी बन्द करता है। दो लैम्पो मे एक लैम्प बुझा देता है। कुछ देर सोचता है।]

मुरारी मोहन—अब ठीक है ! पीछा छूटा शैतान से । यही सोना चाहता था ! बाबूजी का मुँह-लगा नौकर है न ? अब बेखटके अपना काम करूँगा । [सोचता है] मेरी शादी शादी होगी ! किसी जंगली जानवर से ! अब सह नही सकता ! बाबूजी सोचते क्यो नही कि हम लोगो के पास भी दिल होता है ! हम लोग भी हसरत रखते है । मालूम हो जाएगा कि मैं सच कहता था या मजाक करता था । मेरी लाश बतलाएगी ।'ठीक है आज आत्महत्या करनी ही होगी, तभी मेरा पीछा छूटेगा..... "किस्मत की बात कि दुकान की सब अफीम खत्म हो जाए लेकिन क्या मुरारी अपने काम मे चूक सकता है ? एक तोला अलग निकालकर रख ही तो ली । [मेज के ड्राअर से अफीम निकालता है ।] यह है ! मैं ग्रेजुएट हूँ । पिताजी के कहने से मै अपने 'कल्चर' को 'किल' नही कर सकता । 'मैरिज इज एन ईवेन्ट इन लाइफ ।' वह गुडियो की शादी नही है । वे दिन गये जब रामदीन की शादी हुई थी । [सोचता है] 'इट इज बेटर टु किल वन् सेल्फ दैन टु किल वन्स सोल ।' बहुत 'रिवोल्ट' किया, लेकिन कुछ नही । अब सुबह लोग देखेगे कि मुरारी अपने विचारो का कितना पक्का है· ... ! मेरी लाश की शादी करेंगे उसी अनकल्चर्ड लड़की के साथ । ओफ् कितना दर्द है ! [अपनी माँ की फोटो की ओर देखकर] माँ, तुम तो दुनिया मे नही हो, नहीं तो मुमकिन है कि अपने मुरारी को बचा सकती । अच्छा तो मैं भी सुबह तक तुम्हारे पास पहुँचता हूँ । तो अब · ...[सोचता है] खा जाऊँ ? [कुर्सी पर बैठकर अफीम की पुडिया खोलता है । थोड़ी देर सोचता है] नही, बेंच पर लेट कर खाना अच्छा होगा । लोग समझेगे कि मैं सो रहा हूँ । जगाने की कोशिश करेंगे । मजा आएगा । लेकिन मुझे क्या !! [बेंच पर लेटता है और गोली ऊपर उठाता है ।] मुरारी तुम भी अपने विचारो के कितने पक्के हो ! अपने सिद्धान्तो के लिए जिन्दगी को ठोकर मार दी ! अब खा जाऊँ ? वन्, टू [उठकर] अरे ! मैने पत्र तो लिखा ही नही । मेरे मरने के बाद मुमकिन है, पुलिस वाले बाबूजी को तग करें ! करने दो, मुझे भी तो उन्होने तग किया है ! [सोचकर] लेकिन नही, मरने के बाद भी क्या दुश्मनी ! अच्छा लिख दूं [अफीम की गोली को मेज पर

रखकर बैठता है और पत्र लिखते हुए पढ़ता है] 'बाबूजी, आप एक गँवार लडकी से मेरी शादी करने जा रहे हैं। मैंने बहुत विरोध किया, लेकिन आप अपना इरादा नही बदल रहे है। मैं अपने सिद्धान्तो की हत्या नही कर सकता, अपनी ही हत्या कर रहा हूँ। आपका आदेश तो स्वीकार नही कर सका, आपकी अफीम अवश्य स्वीकार कर रहा हूँ। क्षमा कीजिए। मुरारी मोहन।' बस ठीक है। इसी टेबुल पर लेटर छोड दूं। अब चलूं अपना काम करूँ। [अफीम की गोली मेज पर से उठाता है। उसकी ओर देखते हुए] मेरी अमृत की गोली अफीम ! ए स्कारलेट फेयरी ऑव ड्रीम्स !! तेरे व्यापार ने विदेशो में धन बरसा दिया है। आज तेरा यह व्यापार मुझ पर मौत बरसा दे। होमर ने तेरी तारीफ की है। ट्रॉय की सुन्दरी हेलेन ने मेनीलास की शराब मे तुझे ही तो मिलाया था ! अब तू मेरे खून मे मिल जा। बस, दुनिया, तुझे मेरा आखिरी सलाम आगे से प्रेम की कीमत समझ ! चलूं [हाथ उठाकर] चीरियो ! [बेंच पर लेट जाता है, खटका होता है। मुरारी चौंककर उठता है।] कौन ? [कोने की ओर देखता हुआ।] ये शैतान चूहे किसी को मरने भी नही देते। ये क्या समझें कि 'सूसाइड' कितनी सीरियस चीज है। अच्छा शान्त ! मुरारी अब जा रहा है। [फिर लेट जाता है] वन् ' टू [सोचकर] क्या मैं कुछ डर रहा हूँ ? डर रहा हूँ ? लेकिन मुझे मरना ही होगा। मुझे मरना ही होगा। [दरवाजे पर खटखट की आवाज होती है। मुरारी उठकर] कौन है ? रामदीन ? [फिर खटखट की आवाज होती है] अरे ! बोलता क्यो नही ? [फिर खटखट की आवाज] जा मैं नही खोलूंगा [फिर खटखट की आवाज] खोलना ही पडेगा ! [अफीम की गोली और खत उठाकर मेज की दराज मे रखता है।] ठहर [मुरारी दरवाजा खोलता है। आश्चर्य से] अच्छा आप कौन ? आइए !

[एक अठारह वर्षीया लडकी का प्रवेश। नाम है विश्वमोहिनी। अस्त-व्यस्त वेष-भूषा—जैसे दौडकर आ रही है। देखने मे अति सुन्दर। बाल कुछ बिखरकर सामने आ गये हैं। सिर से साडी सरक गयी है। वस्त्रों मे कॉलेज की 'ध्वनि' है। उद्भ्रान्त-सी है।]

मुरारी मोहन—आप कौन हैं ?

विश्वमोहिनी—लाला सीतारामजी कहाँ है ?

मुरारी मोहन—बाहर गये हुए हैं।

विश्वमोहिनी—बाहर गये हुए हैं ? [सोचते हुए कुछ धीरे-से] अच्छा है, वे नहीं हैं।

मुरारी मोहन—[दुहराते हुए] अच्छा है, वे नहीं हैं ? क्या मतलब ?

विश्वमोहिनी—कुछ नहीं।

मुरारी मोहन—किस काम से आप आयी हुई हैं ?

विश्वमोहिनी—मुझे कुछ अफीम चाहिए।

मुरारी मोहन—आपको ? क्यों ?

विश्वमोहिनी—जरूरत है। बहुत जरूरत है।

मुरारी मोहन—दुःख है, सारी अफीम खत्म हो गयी। बाबूजी उसी के लिए गाजीपुर गये हुए हैं।

विश्वमोहिनी—कब तक लौटकर आएँगे ?

मुरारी मोहन—परसों।

विश्वमोहिनी—परसों ? बहुत देर हो जाएगी। [अनुनय के स्वरों में] थोड़ी भी नहीं है ? कुछ तो जरूर होगी। मुझे बहुत जरूरत है।

मुरारी मोहन—इस समय ? आधी रात को ?

विश्वमोहिनी—हाँ, मेरी माताजी बीमार हैं। अफीम खाती हैं। उनकी सारी अफीम खत्म हो गयी है। उन्हें नींद न आने से उनकी तबीयत और भी खराब हो जायगी।

मुरारी मोहन—मुझे बहुत दुःख है, लेकिन अफीम तो नहीं है।

विश्वमोहिनी—[नम्रता से] देखिए, आपकी मुझ पर बड़ी कृपा होगी यदि आप खोजकर थोड़ी-सी दे दें। इतनी बड़ी दूकान में क्या थोड़ी-सी भी अफीम न होगी ?

मुरारी मोहन—[सोचते हुए] अच्छा, बैठिए खोजता हूँ। [मेज की दराज खोलता है, दराज की ओर देखते हुए] आपका परिचय ?

विश्वमोहिनी—[कुरसी पर बैठते हुए] परिचय और अफीम से क्या सम्बन्ध ?

मुरारी मोहन—आपका नाम लिखना होगा। अफीम देते वक्त नाम लिखना होता है।

विश्वमोहिनी—अच्छा, नाम लिखना होगा ? [कुछ ठहरकर] तो फिर मुझे नही चाहिए।

मुरारी मोहन—इसमे हिचकने की क्या बात है ? आप तो अपनी माताजी के लिए ले जा रही हैं ! [दराज बन्द करता है]

विश्वमोहिनी—हाँ, हाँ, मैं उन्ही के लिए ले जा रही हूँ। लेकिन रहने दीजिए, मैं फिर मँगवा लूँगी।

मुरारी मोहन—लेकिन आप तो कह रही हैं कि आपकी माताजी को अभी अफीम चाहिए। विना इसके उन्हे नीद न आएगी।

विश्वमोहिनी—हाँ, नीद नही आएगी। खैर, लिख लीजिए मेरा नाम। [धीरे से] मुझे चिन्ता किस वात की ?

मुरारी मोहन—क्या कहा आपने ?

विश्वमोहिनी—कुछ नही।

मुरारी मोहन—क्या नाम है आपका ?

विश्वमोहिनी—विश्वमोहिनी।

मुरारी मोहन—[एक कागज पर लिखते हुए] नाम तो वहुत सुन्दर है ! क्या आप पढती है ?

विश्वमोहिनी—जी हाँ, एनी वेसेंट कालेज मे सेकण्ड ईयर मे पढती हूँ।

मुरारी मोहन—[लिखता है] अच्छा, आपके पिताजी ?

विश्वमोहिनी—कुछ और वतलाने की जरूरत नही है। आपके पिताजी मेरे पिताजी को अच्छी तरह जानते हैं। आप दीजिए अफीम, मुझे जल्दी चाहिए। माँ की तवीयत खराव है। देर हो रही है।

मुरारी मोहन—अच्छा, तो कितनी चाहिए ?

विश्वमोहिनी—इससे मालूम होता है कि अफीम काफी है। यही एक तोला वहुत होगी। ·· हाँ, एक तोला। [सोचती है]

मुरारी मोहन—एक तोले का क्या कीजियेगा ? [आलमारी खोलता है।]

विश्वमोहिनी—क्या एक तोले से कम मे काम चल जायगा ?

मुरारी मोहन—आपकी बातें कुछ समझ मे नही आ रही हैं।

विश्वमोहिनी—अच्छा, तो एक तोला ही दे दीजिए।

मुरारी मोहन—शायद मेरे पास एक ही तोला है। मुझे भी उसकी कुछ जरूरत है। पर मालूम होता है 'योर नीड इज ग्रेटर दैन माइन।' अच्छा तो लीजिए। [आलमारी से निकालकर पुडिया मे एक गोली देता है। आलमारी बन्द करता है।]

विश्वमोहिनी—[शीघ्रता से लेकर] धन्यवाद, एक ही तोला है? कितने की हुई?

मुरारी मोहन—यो ही ले लीजिए, आपसे कुछ न लूंगा।

विश्वमोहिनी—नही, ऐसा नहीं हो सकता।

मुरारी मोहन—आपने रात मे इतनी तकलीफ की है। फिर आपकी माँ की तबियत खराब है, उनके लिए चाहिए। आपसे कुछ न लूंगा।

विश्वमोहिनी—[टेबुल पर एक रुपया रखते हुए] मैं अपने ऊपर ऋण नहीं छोड सकती।

मुरारी मोहन—आप यह क्या कह रही हैं?

[विश्वमोहिनी एक क्षण में वह गोली खा लेती है। मुरारी हाथ से रोकने की व्यर्थ चेष्टा करता है। विश्वमोहिनी गिरना चाहती है। मुरारी सम्हालकर बेंच पर लिटाता है। स्वय पास की कुरसी पर बैठ जाता है।]

मुरारी मोहन—[व्यग्रता से] यह क्या किया?

विश्वमोहिनी—[शिथिलता से] आत्महत्या!

मुरारी मोहन—अरे, तो मेरे यहाँ क्यो?

विश्वमोहिनी—[शान्ति से] आप पर कोई आँच न आएगी। मैंने पत्र लिखकर रख छोडा है। [एक पत्र निकालकर देती है।] घर मे मरने की जगह नही है। इतने लोग भरे हैं। चौबीस घण्टो का साथ। डाक्टर बुलाकर वे लोग मुझे मरने न देते। इसीलिए आपके यहाँ आना पडा।

मुरारी मोहन—मैं भी तो डाक्टर बुलवा सकता हूँ?

विश्वमोहिनी—ओह, ईश्वर के लिए—मेरे लिए—मत बुलवाइए!

मुरारी मोहन—[लापरवाही से] न बुलवाऊँ ? आपका यह पत्र पढ सकता हूँ ? [विश्वमोहिनी आँखो मे स्वीकृति देती है ।]

मुरारी मोहन—[पत्र पढता है] 'पिताजी ! धृष्टता क्षमा कीजिए । विवाह के लिए आपको अपनी सारी जमींदारी बेचनी पडती । ६०००) आप कहाँ से लाते ? आप तो भिखारी हो जाते । इससे अच्छा यही है कि मैं भगवान् की शरण मे जाऊँ । अब आप निश्चिन्त हो जाइए । आह, यदि मेरे बलिदान से हिन्दू समाज की आँखे खुल सकती ! आपकी, विश्वमोहिनी ।' [गहरी साँस लेकर] कितनी भयानक बात !

विश्वमोहिनी—क्षमा कीजिए । लेकिन मेरी मृत्यु की आवश्यकता है । हिन्दू समाज बहुत भूखा है । [कुछ रुककर] ओह, आप कितने कृपालु हैं । मेरी अन्तिम इच्छा आपने पूरी की । मेरी आपसे एक और प्रार्थना है ।

मुरारी मोहन—बतलाइए ।

विश्वमोहिनी—आपका विवाह हो गया ?

मुरारी मोहन—जी नही ।

विश्वमोहिनी—तो सुनिए, जब आप विवाह करें तो अपने विवाह मे दहेज का एक पैसा न ले । किसी बालिका के पिता को भिखारी न बनाएँ । आप मेरी प्रार्थना मानेंगे ?

मुरारी मोहन—मानूँगा, जरूर मानूँगा ।

विश्वमोहिनी—ओह, आप कितने अच्छे है ! मैं अपने प्रथम और अन्तिम मित्र का नाम जान सकती हूँ ?

मुरारी मोहन—धन्यवाद ! मेरा नाम मुरारी मोहन है ।

विश्वमोहिनी—कितना अच्छा नाम है । मुरारी मोहन मुरारी मोहन विवाह मे एक पैसा न लेना, मुरारी मोहन !

मुरारी मोहन—लेकिन मैं विवाह करना ही नही चाहता ।

विश्वमोहिनी—क्यो ?

मुरारी मोहन—[सोचता है] जब आपने अपना सारा रहस्य मेरे सामने खोल दिया है तब अपनी बात कहने मे मुझे भी क्या सकोच ? देखिए, पिताजी मेरा विवाह बेपढी और गँवार लडकी से करना चाहते हैं ।

विश्वमोहनी—अपने पिताजी को आप समझा नही सकते ?

मुरारी मोहन—पिताजी समझना ही नही चाहते। इसी से मैं भी आज ही—अभी ही—आत्महत्या करने जा रहा था। इसी बेंच पर जिस पर आप लेटी है।

विश्वमोहिनी—[चौंककर] तो मै.... ?

मुरारी मोहन—[बीच ही मे] मै तो मरने जा ही रहा था कि आप आ गयी।

विश्वमोहिनी—आत्महत्या न करना मुरारी मोहन ! मै ही अकेली काफी हूँ। [कुछ रुककर] लेकिन अफीम... अफीम का कुछ असर मुझे मालूम नही पड रहा अभी तक !

मुरारी मोहन—तो जल्दी क्या है ?

विश्वमोहिनी—मैं जल्दी मरना चाहती हूँ। अफीम का असर क्यो नही हो रहा ?

मुरारी मोहन—न होने दीजिए।

विश्वमोहिनी—अफीम खाऊँ और उसका असर न हो ?

मुरारी मोहन—[लापरवाही से] असर क्यो होगा ? आपने अफीम खायी ही कहाँ है ?

विश्वमोहनी—[चौंककर] नही ? अरे ? तो क्या आपने मुझे अफीम नही दी ?

मुरारी मोहन—नही। मैं जानता था कि आप आत्महत्या करने जा रही हैं। मै ऐसे को अफीम क्यो देता ? मैने नही दी।

विश्वमोहिनी—[विस्फारित नेत्रों से] तो फिर क्या दिया ? उठकर बैठ जाती है।

मुरारी मोहन—काली हर्रे की एक गोली। [आलमारी की ओर संकेत करता हुआ क्रीडा पूर्वक] बाबूजी की दवाओ की आलमारी से।

विश्वमोहिनी—[किंचित क्रोध से] आप बडे वैसे हैं। आप मेरा अपमान करना चाहते हैं ? मै मरना ही चाहती हूँ। मुझे अफीम चाहिए।

मुरारी मोहन—[जैसे बात सुनी ही नहीं] अफीम के बदले हर्रे की गोली ! जरा मेरी सूझ तो देखिए !

विश्वमोहिनी—रखिए अपने पास आप अपनी सूझ। इस समय शहर की सब दूकानें बन्द हो गयी है नही तो मैं आपकी अफीम की परवा भी न करती।

मुरारी मोहन—तो न करे।

विश्वमोहिनी—लेकिन मुझे अफीम चाहिए।

मुरारी मोहन—[खडे होकर] देखिए! सिर्फ एक तोला अफीम बाकी है जो दराज मे रखी हुई है। [दराज की ओर सकेत] अगर मै वह आपको दे दूं तो फिर मैं ['मैं' पर जोर] आत्महत्या किस चीज मे करूंगा?

विश्वमोहिनी—आप? आप आत्महत्या नही कर सकते। मैं करूंगी।

मुरारी मोहन—नही, मैं करूंगा।

विश्वमोहिनी—यह हो ही नही सकता। आपकी परिस्थितियाँ सुधर सकती है, मेरी नही।

मुरारी मोहन—नही, आपकी परिस्थितियाँ सुधर सकती है, मेरी नही। उठाइए अपना यह रुपया।

विश्वमोहिनी—नही, दीजिए मुझे अफीम।

मुरारी मोहन—नही दूंगा।

विश्वमोहिनी—नही देंगे तो मैं ..

मुरारी मोहन—क्या करेंगी आप?

विश्वमोहिनी—[मुट्ठी बांधते हुए विवशता से] ओह मैं क्या करूं? [उठकर दराज खोलना चाहती है।]

मुरारी मोहन—[रोकते हुए] मुझे माफ कीजिए। जरा आप अपने को सम्हालिए 'हैव पेशेन्स गुड गर्ल।' सब मामला सुलझ जाएगा।

विश्वमोहिनी—कैसे? [बैठती है] नही सुलझ सकता। ससार स्वार्थी है, पापी है। नही।

मुरारी मोहन—सारा ससार स्वार्थी नहीं है, पापी नही है, शान्त हो देखिए। उठाइए यह रुपया।

विश्वमोहिनी—अच्छा, आप आत्महत्या तो न करेंगे?

मुरारी मोहन—तो क्या करूं?

विश्वमोहिनी—मैं क्या जानूं ?

मुरारी मोहन—तो आप एक काम कर सकती हैं। आपके पिताजी मेरे पिताजी को जानते ही हैं। उनके द्वारा मेरे पिताजी से कहला दे कि अगर मैंने कभी शादी की तो मै बिना दहेज के करूंगा। यदि ऐसा न होगा तो इस समय तो नही उस समय अवश्य आत्महत्या कर लूंगा।

विश्वमोहिनी—अवश्य। मुझे विश्वास है कि मेरे पिताजी का कहना आपके पिताजी जरूर मान जाएँगे। नही तो उनको ऐसी घटनाएँ देखने के लिए तैयार रहना चाहिए।

मुरारी मोहन—अच्छा तो उठाइए, अपना यह रुपया। हर्रे की क्या कीमत ?

विश्वमोहिनी—[रुपया उठाकर] अच्छा लीजिए। [सोचती है।] यह बतलाइए कि आपको यह कैसे मालूम हुआ कि मै आत्महत्या करने के लिए अफीम ले रही हूँ। मैंने तो अपनी माँ की बीमारी की ही बात कही थी।

मुरारी मोहन—मैं जानता था। आपकी उखडी-उखडी-सी बातें, नाम देने से इनकार करना वगैरह, वगैरह। कुछ इस ढग से आपने कहा कि मुझे शक हो गया। अफीम खाने के लिए अनुभव की जरूरत है। कच्चा आदमी खा ही नही सकता, मैं जानता हूँ। मैंने आपको हर्रे की गोली दे दी, आपने ले ली। अफीम और हर्रे मे कोई तमीज ही नही।

विश्वमोहिनी—और आपको वक्त पर हर्रे की गोली भी मिल गयी !

मुरारी मोहन—मिलती क्यो न ? आत्महत्या करने वालो से कभी-कभी ईश्वर भी डर जाता है। [हास्य]

[चौकीदार की आवाज सडक पर होती है—'जागते रहो।']

मुरारी मोहन—चौकीदार कह रहा है—जागते रहो। और कितनी देर जागते रहे ? ग्यारह तो बज गये होगे।

विश्वमोहिनी—जीवन भर ...

मुरारी मोहन—जीवन ! कितना बडा जीवन ! दु:ख-दर्द से भरा

हुआ। पढने की चिन्ता, कमाने की चिन्ता, स्त्री की चिन्ता, प्रेम की चिन्ता [चौंककर] ओह, मै कहाँ की बात ले बैठा। हाँ, मैं आपको आपके मकान पर भिजवा दूं।

विश्वमोहिनी—चली जाऊँगी। नौकरानी को बाहर बरामदे मे छोड आयी हूं।

मुरारी मोहन—शायद इसलिए कि आपकी आत्महत्या की खबर लेकर घर जाती।

विश्वमोहिनी—हाँ, लेकिन जैसा मैंने कहा—आप पर आँच न आती। उसकी गवाही और मेरा पत्र आपको निरपराध ही साबित करते।

मुरारी मोहन—तो क्या आपकी नौकरानी को मालूम था कि आप आत्महत्या करने जा रही हैं?

विश्वमोहिनी—बिलकुल नही। लेकिन वह यह कह सकती थी कि मैं यहाँ अपने मन से आयी थी। आप तो निरपराध ही रहते। यही साबित होता।

मुरारी मोहन—धन्यवाद! अब क्या साबित होता?

विश्वमोहिनी—यही कि आप इतने कृपालु हैं

मुरारी मोहन—[बीच ही मे] कि आधी रात तक किसी को रोक सकता हूँ। अच्छा ठहरिए। मैं इन्तजाम करता हूं। [पुकारता है] चौकीदार!

चौकीदार—[बाहर से] आया हुजूर!

विश्वमोहिनी—चौकीदार को क्यो पुकार रहे है?

मुरारी मोहन—आपको गिरफ्तार करने के लिए, पुलिस मे खबर भेजना है। आप आत्महत्या करना चाहती थी।

विश्वमोहिनी—बुलाइए पुलिस को। मैं भी आपको गिरफ्तार करा दूंगी। आप भी आत्महत्या करना चाहते थे। अफीम आपके पास है या मेरे पास?

मुरारी मोहन—मेरी तो अफीम की दूकान ही है। साइनबोर्ड देख लीजिए [साइनबोर्ड की तरफ इशारा करता है]—लाला सीताराम अफीम के व्यापारी। [चौकीदार का प्रवेश।]

चौकीदार—[सलाम करता है ।] कहिए हुजूर !

मुरारी मोहन—जोखू ! पहरा देने के लिए तुम आ गये ?

चौकीदार—हाँ, हुजूर ! ग्यारह बज गये ।

मुरारी मोहन—देखो, इन्हे इनके घर पहुँचा दो। ये अपना घर बतला देगी। बाहर बरामदे मे इनकी नौकरानी होगी। उसे भी लेते जाना। आज दावत मे कुछ देर हो गयी।

चौकीदार—बहुत अच्छा हुजूर ! [सलाम करता है।]

विश्वमोहिनी—मैं खुद चली जाऊँगी।

मुरारी मोहन—ओ, मुझे खुद साथ चलना चाहिए।

विश्वमोहिनी—[लज्जित होकर] मेरा मकान थोडी ही दूर पर है। आपको ज्यादा तकलीफ न होगी।

मुरारी मोहन—कुछ तकलीफो मे आराम ही मिलता है। जोखू ! तुम जाओ।

चौकीदार—हुजूर ! एक बात है।

मुरारी मोहन—क्या ?

चौकीदार—हुजूर ! पहरा देते-देते थक जाता हूँ। कुछ अफीम हो तो मिल जाय।

मुरारी मोहन—कितनी चाहिए ?

चौकीदार—हुजूर जितनी दे दें।

मुरारी मोहन—एक तोला भर है।

चौकीदार—[खुश होकर] क्या कहना हुजूर ? एक हफ्ते तक चगा हो जाऊँगा।

मुरारी मोहन—[मेज की दराज खोल अफीम निकालकर देते हुए] अच्छा लो, होशियारी से पहरा देना।

चौकीदार—[सलाम करता है।] अब हुजूर मैं अकेला सारे शहर का पहरा दे सकता हूँ। [बाहर जाता है]

विश्वमोहिनी—इसका नाम नही लिखा ?

मुरारी मोहन—दूकान का पहरेदार है। जाना-पहचाना हुआ आदमी, फिर नाम तो बडे आदमियो के लिखे जाते है !

विश्वमोहिनी—क्योंकि वे ही ज्यादातर आत्महत्या करने की बात सोचते हैं।

मुरारी मोहन—[लज्जित होकर] जाने दीजिए इन बातों को। [गहरी साँस लेकर] चलो, पीछा छूटा अफीम से। छोटी-सी चीज, पर कितना बड़ा असर? सिर्फ, एक तोला अफीम!

विश्वमोहिनी—[मुस्कराकर] और उसकी भी कीमत नहीं मिली!

मुरारी मोहन—मिली न! बहुत मिली, आप मिल गयीं!

[विश्वमोहिनी प्रसन्नता में लज्जा मिला देती है। दोनों जाने को प्रस्तुत हैं।]

[पर्दा गिरता है]

पर्दे के पीछे

उदयशकर भट्ट

पात्र

छीतरमल	सेठ
चाँदीराम	सेठ का काका
लालचन्द, नेमिचन्द	दो कांग्रेसी व्यक्ति

दीनू, बड़ा मुनीम, डाक्टर, किरायेदार, दरोगा तथा अन्य व्यक्ति

[सेठ छीतरमल की दूकान। दूकान क्या है मकान है! सामने दालान है जिसमे तीन खुले दरवाजे हैं। पश्चिम की तरफ लकडी के तख्तो का पर्दा लगाकर मुनीमो के बैठने का स्थान बना है, जहाँ छोटे-छोटे डेस्को के साथ दो मुनीम बैठे काम कर रहे हैं। बीच के भाग मे बैठने के लिए गद्दे बिछे हैं। बीच मे दक्षिण की तरफ एक बडे गद्दे पर एक ओर गद्दी और तकिये बिछे हैं। एक छोटा सा लोहे का सन्दूक तथा टेलीफोन बाईं तरफ रखा है। उसके साथ ही मकान मे भीतर जाने का दरवाजा है, जिस पर पर्दा गिरा हुआ है। दालान के बाईं तरफ पश्चिम की ओर से जहाँ दो मुनीम बैठे है कई प्रकार की सख्या बोलने की आवाज आ रही है—जैसे पाँच सौ तीन रु एक आना दो पाई, छह सौ छब्बीस रु नौ आना आठ पाई, रोकड मे जमा। सत्ताईस सौ रुपया बम्बई की गाँठो का आदि-आदि। सब सख्याएँ तीन-चार सख्या वाली है। कभी-कभी एक मुनीम दूसरे को डाँटता भी सुनाई देता है, या कभी-कभी एक-दूसरे पर व्यग्य भी करता है। दाईं तरफ भी इसी तरह एक पर्दा डालकर कुछ कुर्सियाँ, बीच मे एक मेज और एक सोफा-सेट बिछा दिया गया है। नीचे एक कार्पेट बिछा है। दाईं ओर का भाग भी दर्शको के सामने ही है। इस समय पर्दा नही है। यहाँ फर्म के मालिक सेठ छीतरमल की गद्दी है। छीतरमल की अवस्था ४२ वर्ष और शरीर दुहरा है। बन्द गले का लट्ठे का कोट, काश्मीरी बेल-बूटे की टोपी, पतली धोती, पैर मे काला पम्प शू पहना है। रग गेहुआँ, नाक मोटी, चेचक के दागों से भरी, आँखें चश्मे के भीतर मर्मभेदी। शरीर पुष्ट। मुँह मे कुछ-न-कुछ चबाते रहने की आदत। बात करते समय दाँत बाहर निकल आते हैं

और तमाम चेहरा मुडे हुए अखबार की तरह सिमट जाता है, जैसे घिघियाकर बात कर रहा हो। बात करते समय बातो के आधार पर मुख के कोण बनते हैं। अँगुलियो मे कई प्रकार की अँगूठियां, और यदि कभी पैर खाली दिखायी दें तो पैर के दोनो अँगूठों मे एक-एक चांदी का छल्ला भी दिखायी देगा। इस समय बाईं ओर एक डाक्टर कुर्सी पर बैठा है। डाक्टर सर्ज का काला सूट पहने है। आँखो पर चश्मा, शरीर भारी, रग साँवला। कभी-कभी स्टेथिस्कोप हिलाता है, कभी उसे जेब मे रख लेता है। वह सेठ के पशु-अस्पताल का नौकर है। उसकी अवस्था है लगभग पैंतीस वर्ष। इस समय डाक्टर अकेला है। सेठ ने उसे बुलाया है। नौकर दीनू जैसे ही स्टूल पर गगासागर लाकर रखता है वैसे ही डाक्टर बोल उठाता है।]

डाक्टर—दीनू, सेठजी कब आएँगे भाई ?

दीनू—[स्टूल पर गगासागर रखने के बाद जेब से बीडी निकाल कर सुलगाता हुआ] बैठो डाक्टर साब, बैठो, सेठ आने ही वाले है। गजब है, एक आने की आठ बीडी ! कभी एक आने का बडल मिला करे था, बडल ! सब चीजो मे आग लगी है। पैसे की कोई चीज नी रही जी डाक्टर साब, [पास जाकर] मेरी भानजी खाँसी के मारे मरी जा रही है। कोई द्वाई दे दो न ! तुम तो कबूतरो का इलाज करो हो डाक्टर साब !

डाक्टर—[पैर तथा स्टेथिस्कोप हिलाता हुआ] खाँसी कब से है ?

दीनू—[बीडी का कश खींचकर] ये ही कोई दो मीन्हे से डाक्टर साब, जहाँ खाया वही उलट धरे है। रातो खाँसे है, मेरी दारी सोने भी तो नी दे है और थारे कबूतरो, बन्दरो, जानवरो का के हाल है ?

[मुनीम बाईं तरफ से बाहर निकल आता है]

रामधन—डाक्टर शाब, कोई पेट का भी इलाज करो हो ? भूख ही मारी गयी। कुछ अच्छा ही नही लगे। दीनू, ओ रे सुन, जाके झींगे की दुकान से दो तेल की खस्ता कचौरी तो ले आ। ले दो आने। [पैसे फेंकता है।] और चटनी जरूर लइयो। कह्यो गरमा-गरम दे। जा, अभी काम करना है। सारी रोकड मिलाने को पडी है। हाँ, तो फिर क्या कहो हो ? तुम भी लोगे क्या एक-दो कचौरी डाक्टर शाब ! कचौरी

बडी नायाब बनावे है, भीगा। हाँ, तो पेट ' [दीनू जाता है।]

डाक्टर—आश्चर्य यह है, तुम बीमार क्यो नही हो गये पूरी तरह, और मर नही गये ?

रामधन—क्या कहो हो डाक्टर साब ! मैं क्यो मरता भला ? ये भी अच्छी रही, पेट की बीमारी का हाल कहो तो लगे मारने। तनख्वाह तो तुम्हारे यहीं से जाय है न ?

डाक्टर—[उठकर] मुनीमजी, मेरा मतलब, सुनो तो सही।

रामधन—देख लिया तुम्हारा मतलब ! तुम्हारे जैसे सैकडो हैं सैर मे। क्या कमी है ? हमने कहा घर के अपणे ही है पूछ लो। पर यहाँ तो [दीनू आता है]—ले आया दीनू ? ला भीतर ले आ। पानी भी एक गिलास लइयो।

[घुटने जोडकर खाने लगता है।]

डाक्टर—मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तो कह रहा हूँ तेल की कचौरी रोग पैदा करती है। इससे लिवर खराब होता है। वह इण्टे-स्टाइन मे जाकर जम जाती है और तुम्हारे-जैसे [आगे बढता है]

रामधन—रहने दो, आगे कहाँ जूते पहने बढे चले आओ हो ? भिष्ट कर दोगे क्या ? रहो। हाँ [वहीं से एक मुनीम को आवाज देता हुआ, मुँह मे कचौरी भरकर] घासीलाल, सेठ मन्नालाल रामपत का भी हिशाब तैयार कर लीजो, रोजाना के खात्ते से। मैं बश अभी आया। आधी कचौरी रह गई है। ला दीनू, पानी दे। [किनारे पर बैठकर] ला ओक मे ही प्यादे मेरे यार ! [पानी पीता है। डकार लेकर] शिव शकर, क्या बढिया कचौरी बनावे है मेरा यार, बस जी करे है खाते जावें। [धोती से हाथ-मुँह पोछकर, फिर एक डकार और लेता है।] हाँ घासीलाल, क्या कहा तैंने ? [जाकर बैठ जाता है। फिर उसी भाग से हिसाब-किताब की कई आवाजें आती रहती हैं।]

दीनू—डाक्टर साब, थारी कसम, लो बोलो, पाणी पिओगे क्या ? ताजो अभी भरकर लाया हूँ। सिगरेट लाऊँ थारे लिए ? बस, ऐसी दवा दो कि छोरी खात्ते ही ठीक हो जाय। तुम्हारी कसम, रातो नी सोने देत्ती। मैं तो कहूँ मर जाय तो ही अच्छा।

डाक्टर—ठीक हो जायेगी। सुना, क्या हाल है हमारे सेठ का ?

दीनू—गप्फे है गप्फे ! [दोनों हाथ मिलाकर अँगुलियाँ गोल करके धीरे से] क्या पूछो हो, न हजार का ठीक, न लाख का। एक हम है सवेरे से शाम तक जी-हुजूरी करते रहे। तीन लाख तो अभी-अभी हाथ आया है। वैसे है सेठ भला। नौकरो को एक-एक कुर्ता एक एक धोती दी। [मुनीम की तरफ इशारा करके धीरे से] इन्हे भी बहुत कुछ दिया। मेरी लडकी का व्याह था, सौ दे दिये। [उपेक्षा से] ऐसे ही गुजर-बसर हो री है डाक्टर साव, सुने है तुम्हारे अस्पताल मे भी एक कमरा और बनेगा। हमारा सेठ वैसे परोपकारी है। वैसे तुम जानो बेईमानी कौन नी करे है, पर दान करता रहे तो सारा पाप धुल जाय है। मन्दिर बनवा दो, धर्मशाला बनवा दो, बामनो को खिला दो बस ! [डाक्टर अपने ध्यान मे मग्न है, दीनू उसके सामने कहता जा रहा है, कभी कभी दरी-गद्दे की सिकुडन भी ठीक कर देता है। कपडा लेकर सन्दूक भी साफ कर देता है।] इतनी बीत गई और भी बीत जायगी डाक्टर साव। घीसालाल जी, पाणी पिओगे क्या ? ताजा है, अभी भरा है। कचौरी-अचौरी मँगाओ तो थाने भी ल्या दूं। [वहीं से आवाज आती है, 'दीनू जरा-सा पाणी नो दावात मे दे जा'] ल्याया जी, अभी ल्याया। [पानी लेकर देता है] क्या गूंगे हो डाक्टर साव ! [पास जाकर धीरे-से] सेठ से कहो तुम्हे भी कुछ दे दे, तनखाह बढा दे। आजकल गप्फे हैं गप्फे। सेठानी तीर्थों को जा री है।

डाक्टर—[अपने आप बेचैनी से] न जाने कब तक बैठना पडेगा ?

दीनू—बस अब आते ही होगे। बाहर गये है, बस, इब आई मोटर। बडे साव के पास बुलाया था। कहे हैं चोर-बाजारी की थी, उसी के मामले मे। [पास जाकर धीरे से] देख नी रहे बहियाँ बदली जा री हैं। दिन-रात-काम होवे हैं। बडे मुनीमजी भी साथ है। [मोटर का हार्न] लो आ गए। बडी उमर है सेठजी की।

[सेठ उसी रूप मे बडे मुनीम के साथ आता है और फिर चुपचाप बीच के भाग मे खडा होकर मुनीम को समझाता है, एकदम डाक्टर के ऊपर नजर पड जाती है।]

सेठ—अच्छा, डाक्टर साहब, आ गये क्या ? न हो थोडी देर घूम आओ। दीनू, देखे क्या है, ले जा डाक्टर साहब को बाहर ! [डाक्टर, जो सेठ के आने के समय से ही खडा है, दीनू के साथ बाहर निकल जाता है] अच्छा, वहियाँ तो बदल गयी, आगे क्या करना है ?

बडा मुनीम—कुछ नही, अब वे क्या कर सकते हैं ? भगवान् ने चाहा तो उनके पितरो को भी पता नही लगेगा सेठजी !

सेठ—हाँ, [चारो तरफ देखकर] ठीक है। चाक्स रहो। फिर कोई भी कुछ नही विगाड सकेगा। साहब से मैंने तो कह दिया—बेईमानी करने वाले की ऐसी की तैसी। तुम जानो, भला हम क्यो बेईमानी करते ?

बडा मुनीम—यह तो व्यापार है। दो पैसे सभी कमाना चाहे है। मैंने भी कहा वैसे सभी कुछ तो सरकार का है। हम क्या नही चाहते ' जो कुछ हो ठीक हो।

सेठ—[झूमता हुआ] हाँ हाँ, ठीक है। बात ऐसी करो तुम जानो कि आदमी गिरफ्त आवे। तुमने ठीक कहा। मैं सबको देख लूंगा। [सामने खडा होकर जूते की ओर इशारा करके] चाँदी का चाहिए। वैसे इसे ऋषि-मुनि भी छोड नही सके तुम जानो। फिर इनकी तो बात ही क्या है ! [आँखें मटकाकर] पर इसका ख्याल रखना ही पडेगा। न हो, दो सौ-चार सौ फेंक दो उसकी तरफ भी, कुत्ते को रोटी का टुकडा डाल दो तो काटना क्या भौंकना भी छोड दे। चाचाजी कहा करें थे, रुपया कमाओ तो एक आना भूरसी मे दो—कैसे भला, एक पैसा नौकरो मे बाँटो, एक पैसा फेंककर अफसर का मुँह बन्द करो, दो पैसे दान करो—तो पन्द्रह आने पचे-पचाए धरे है।

मुनीम—मुझे क्या बताओ हो सेठजी, इसी घर मे तो पला हूँ। वैसा तो आदमी होना मुश्किल है। इतने गरीबनिवाज, एक बार काका बीमार हो गये तो सुबह-साँझ दोनो वखत जाते थे देखने। उन दिनो हकीम, वैद होवें थे, सो उन्होंने उनसे कह दिया—रुपये की फिकर न करना, घर भर दूंगा वैदजी, बस, मेरे मुनीम को अच्छा कर दो।

सेठ—मुझे याद है। तुम्हारे ब्याह मे ही सब कुछ अपने हाथ से किया।

मुनीम—घीसालाल, वहियो का क्या हाल है ?

घीसालाल—तैयार है वस, सब मामला । रामधन जी कह रहे है ''

सेठ—उस डाक्टर को तो बुला घीसालाल, यह भी वडा कामचोर है। [घीसा जाता है] काम-धन्धा करेगा नही, और चाहेगा कि तनखा वढ जाय। [तेजी से] वढा दूंगा तेरी तनखा। चोर न हो कहीं का। [मुनीम से] कोई और नही है ? यह तो घरेलू इलाज के भी काम का नही है। वाई को पिछले दिनो बुखार आया, वह भी तो नही उतार सका। पर जव देखो, इसका भी एक आदमी है इनकमटैक्स आफिस मे।

मुनीम—मुझे तो इसमे कोई चतुराई नही दीखती। मेरी वाई की तो इससे खाँसी भी ठीक नही हुई, बुखार तो क्या जाता ? पर अव तो काम निकालना है सेठजी !

सेठ—नालायक है नालायक ! लो आ गया, तुम जाओ। [डाक्टर आता है।] आइए डाक्टर साहव, आइए। कहिए मिजाज तो ठीक है न ?

मुनीम—हमारे उस मामले का क्या हुआ डाक्टर साहव ? वात यह है, वह काम तो होना ही चाहिए।

सेठ—मैं वात करूँगा मुनीमजी, तुम जाओ।

[मुनीम जाता है]

हाँ, बैठिए न इधर बैठिए सोफे पर। अरे दीनू, देख सामने की दूकान से डाक्टर साहव के लिए चाय-वाय ला। अच्छा रहने दे, फिर सही। हाँ, तो कहिए अस्पताल का क्या हाल-चाल है ?

डाक्टर—इस अस्पताल के कारण सारे देश मे आपका नाम हो रहा है। मनुष्य के लिए तो सभी अस्पताल खोलते है, जानवरो के लिए भी सरकार ने अस्पताल खोले है, परन्तु आपने पक्षियो और जानवरो दोनो के लिए अस्पताल खोला है, उससे सारी जगह नाम है।

सेठ—खैर, वह तो है ही, तो क्या कुछ समाचारपत्रो मे निकला है ?

डाक्टर—जी, यह लीजिए 'आदर्श' ने लिखा है कि सेठ छीतरमल जैसा दानी, परोपकारी व्यक्ति होना दुर्लभ है। यह पशु-पक्षियो के चिकित्सालय के सम्बन्ध मे एक लेख 'लोक-पच' मे निकला है। इसमे मेरी भी काफी प्रशसा की गयी है।

सेठ—'आदर्श' के सम्पादक को तो मैं जानता हूँ, उसे मेरी फर्म का विज्ञापन मिलता है। 'लोक-पच' का सम्पादक कौन है?

डाक्टर—वह मेरे एक मित्र हैं।

सेठ—क्या हमारे सम्बन्ध मे 'नवीन भारत', 'विश्व सन्देश' जैसे पत्रो मे कुछ नही निकल सकता? मेरा मतलब, [बात का प्रसग बदलते हुए] अस्पताल के सम्बन्ध मे बराबर कुछ-न-कुछ निकलते रहना चाहिए। तुम्हे मालूम है मैने तीस हजार रुपया खर्च करके अस्पताल का मकान बनवाया है। पन्द्रह हजार की दवाइयाँ और आठ सौ-नौ सौ का खर्च ऊपर से।... लो काकाजी आ गये। सब मिलकर इतना तो अब तक हो ही गया।

[सेठ के पिता का भाई शुद्ध मारवाडी वेश मे तिलक लगाये, माला हाथ मे लिये, लगभग साठ वर्ष की उम्र का, प्रवेश करता है। केवल मुंह में ही राम-राम कहता हुआ और गोमुखी मे माला फेरता हुआ चुपचाप आकर बीच की गद्दी के एक किनारे बैठ जाता है। रह-रहकर गोमुखी हिलाता है, नाम है चाँदीराम।]

चाँदीराम—अस्पताल का क्या हाल है डाक्टर साहब? राम, राम! राम, राम!

डाक्टर—जी, ठीक ही चल रहा है। इस समय दो बैल, सात घोडे, दो गधे, पन्द्रह कबूतर, चार बटेर, दो तीतर और सौ चिडियाएँ है। उनमे दस कबूतरो, एक बटेर, दोनो तीतरो और चालीस चिडियो का इलाज हो रहा है। एक बन्दर भी आज दाखिल हुआ है। सवेरे ही उसका ड्रेसिंग हुआ है। पशु ठीक हो रहे हैं।

चाँदीराम—सवेरे जब मैं मन्दिर मे लौटकर गया तो वहाँ कोई भी नही था। [राम राम जपना]

सेठ—देखो डाक्टर, मैने सुना है तुमने अपनी प्रैक्टिस भी शुरू कर दी है। यह ठीक नही है। डेढ सौ रुपया नगद तनखाह का मिले है फिर उसी मे गुजारा करो, तुम जानो, रुपया मुफ्त मे थोडे ही आवे है!

चाँदीराम—इसका मतलब तो यह है कि बीमारो का इलाज ठीक नही होता। [राम राम जपना]

डाक्टर—अस्पताल तो आठ बजे खुलता है। वैसे आपने कहा था कि,अस्पताल के बाद प्रैक्टिस कर लिया करो। वही करता हूँ। आज-कल डेढ सौ मे गुजर भी तो नही होती। इतना बडा परिवार है। मकान का किराया भी मारे डाल रहा है। यदि

चाँदीराम—पर अब तो रोगियो की सख्या इतनी है कि तुम्हे फुरसत ही नहीं मिलती होगी! साफ है, बीमारो का ठीक से इलाज नही होता होगा। [राम राम जपना]

सेठ—डेढ सौ मैंने इसीलिए दिये कि तुम मन लगाकर काम करोगे। वैसे एक डाक्टर सवा सौ लेने को भी तैयार था। सेवा का काम है

चाँदीराम—सेवा का भाव रखो डाक्टर साहब, स्वर्ग मिलेगा। राम राम

डाक्टर—[कुछ चुप रहकर] पेट नही भरता सेठजी, नही तो हम भी सेवा ही करते है।

चाँदीराम—सन्तोष का फल मीठा होता है डाक्टर साब, अरे घीसालाल! [राम राम जपना]

घीसालाल—जी आया!

चाँदीराम—छीतर, इनकमटैक्स का क्या हुआ? माने वे लोग?

सेठ—उनका भी इलाज किया जा रहा है काका!

चाँदीराम—[गोमुखी हिलाता है, घीसा आता है।] कितना काम हो गया रे?

घीसालाल—तैयार है मामला। सब बहियाँ ठीक हो रही है।

चाँदीराम—बारे मे हाँ समझा।

सेठ—हाँ, तो डाक्टर साहब, सोच लो, प्राइवेट इलाज करना तो तुम जानो ठीक नही है। आज मैंने तुम्हे इसीलिए बुलाया है। मैंने सुना था, काका कह रहे थे मन्दिर से लौटते हुए कि

डाक्टर—सेठजी, फिर तनखाह ही बढा दीजिए। [गिडगिडाता है]

सेठ—लूट का माल है डाक्टर, या कोई भण्डारा खोल रखा है?

चाँदीराम—[गोमुखी हिलाकर एकदम] तभी देश का बेडा गरक हो रिया है डाक्टर! [राम राम राम राम जपना]

डाक्टर—काका साहब, भूखे रहकर सेवा कैसे करें ? सब कुछ इतना महँगा है। तीन बच्चे, बीवी, मैं, एक बूढी माँ। कैसे गुजारा हो ? आपके पास इतने मकान है, यदि एक मकान मिल जाए तो चालीस रुपये किराये के बचें।

सेठ—हुँह, आजकल मकान हैं कहाँ, और जो है वे किराये पर हैं। डेढ सौ से कम तो किसी का किराया भी नही, फिर आपको कैसे दे दूं ? और मकान की तो नही ठहरी थी !

चाँदीराम—आज मेरे सब मकान खाली करा दो तो देखो हर एक मकान ढाई सौ-तीन सौ पर चढता है कि नही, फिर पगडी तीन हजार फी मकान अलग ! चलो इतना ही करो। किसी अफसर से मिलकर खाली करा दो। मैं अपने मकानो मे से खोजकर एक तुम्हे चालीस पर दे दूंगा। [राम राम राम] जाओ, बिजली-पानी दे देना।

सेठ—तीस तो बिजली-पानी का ही पड जाता है। अच्छा एक काम करो डाक्टर, मुझे तुम्हारा बडा ख्याल है। तुम्हारे दस रुपए बढा दिये जाएँगे, सिर्फ दो लेख महीने मे किसी अखबार मे अस्पताल के सम्बन्ध मे निकलवा दिया करो। बोलो, है पक्की ?

चाँदीराम—देखो, दस रुपये थोडे नही है। सेवा का काम है। और उन लेखो मे 'सस्थापक, अस्पताल' का नाम जरूर छपे। [राम राम जपना] और वह तो छपेगा ही ! भला उसके बिना अस्पताल क्या ?

सेठ—अस्पताल से हमे क्या लाभ है, तुम्ही सोचो। हमने तो सिर्फ परोपकार के ख्याल से यह काम शुरू किया है। मनुष्यो के लिए तो लोगो ने अस्पताल खोल ही रखे हैं। इन बेचारे पशु-पक्षियो को भी कोई पूछने वाला हो ? मैं तो जब किसी पशु-पक्षी को दुखी-बीमार देखूं हूँ, दया के मारे जी भर आवे है।

चाँदीराम—इनका तो दुख नही देखा जाता, नहीं तो हमे क्या पडी जो मुफत की मुसीबत मोल लें। बोलो, है मजूर? [राम राम राम राम] भला, तुम सुबह-शाम भजन भी करो हो ? भजन किया करो भजन। सब पाप काटने वाला वही है चक्र-सुदर्शनधारी गिरधारी। मदनलालजी, मदनलालजी !

बड़ा मुनीम—जी काका साहब, हाजिर ! [आता है]

चाँदीराम—मुनीमजी, रामपत की फर्म से सब रुपये की वसूली हो गयी ?

बड़ा मुनीम—अभी तो काका साहब, आधा रुपया दिया है। आधा कहते हैं आगे के महीने मे देंगे। उस बैरिस्टर ने इस मास का किराया नही भेजा। घासीलाल, जा तो सही, किराया क्यो नही देता ?

घासीलाल—सवेरे गया तो था। कहता था, सेठ से बोलो—पहले हमारा मेहनताना दे पचास रुपया, फिर किराया देंगे।

चाँदीराम और सेठ—[दोनों] कैसा मेहनताना ?

बड़ा मुनीम—वह अर्जी दावा दायर कराया था न, सोनीमल हर-भजन के खिलाफ।

सेठ—तो इससे क्यो कराया ? अपना वकील कहाँ गया था ?

चाँदीराम—आ गयी न मुसीबत ! तभी तो कहता हूँ सोच-समझकर काम करो। आजकल जमाना बड़ा खराब है। कितना काम था ?

बड़ा मुनीम—अपना वकील उस दिन कही बाहर गया था। मैंने कहा, उसी से करा लो। बैरिस्टर की कुछ चलती तो है नही, दया आ गयी इसी से मुशी ने अर्जी लिखी और बैरिस्टर ने दस्तखत करके कचहरी मे पेश कर दी थी।

चाँदीराम—बस, इतनी-सी बात के पचास रुपये ? हद हो गयी। लूट है लूट ! उससे कहो कुछ काम भी हो, बारह रुपये पर फैसला कर लो। [राम राम जपना]

सेठ—हाँ फिर, डाक्टर साहब, बोलो क्या सलाह है ? सिर्फ दो लेख। इससे एक तो तुम्हारा नाम होगा, इधर हमारा काम काम क्या, अस्पताल का प्रचार।'

चाँदीराम—मान जाओ डाक्टर साब, चलो हो गया। दस बढा दो। अपने ही आदमी हैं।

डाक्टर—[चुप रहकर] पर हर मास अखबार मे छपवाना तो वे भी तो माँगेगे। आखिर उनको क्या लाभ है अस्पताल की खबरें छापने से ?

चाँदीराम—क्यो, लाभ क्यो नही ? हमी उस अखबार के ग्राहक बन

जाएँगे, और दो को वना देंगे। एक तुम भी वन जाना। एक कम्पाउण्डर होगा। थोडा लाभ है ? और फिर उससे हमारा कुछ काम बढा तो उसे भी कुछ दे देंगे।

डाक्टर—मैं नही समझा।

सेठ—इस वार हमारी सलाह है, चीफ कमिश्नर को बुलाकर अस्पताल दिखाया जाए।

चाँदीराम—क्या वुरा है, क्या वुरा है ? सव शहर के वडे आदमी भी उसी वखत आ जाएँ।

बड़ा मुनीम—[आता हुआ] डाक्टर साहव, वुरा न मानो तो वात कहूँ। इस घर [सेठ के] मे किसी वात की कमी नही रहती। तुम तनखा के लिए लडो हो। यहाँ का नौकर राजा की तरह रहे है। चाहिए लगन से काम करने की आदत। कुछ करके दिखाओ फिर सेठजी से कहने की जरूरत नही होगी। समझे ! काकाजी जैसा दयालु तो होना मुश्किल है। देख नही रहे ? बिना ब्राह्मणो को भोजन कराए भोजन नही करते। यह दूसरी वात है कि वे घर के ही रसोइए हैं।

सेठ—मैं तो आज तुम्हारे पाँच सौ कर दूं। पाँच सौ का काम करो।

डाक्टर—मैं जी लगाकर काम करता हूँ। सिर्फ अस्पताल के वाद प्राइवेट प्रैक्टिस करता हूँ, और जो काम कहिए करूँ।

सेठ—इन्हे समझाओ मुनीमजी, मैं अभी आया। [भीतर की तरफ से मकान मे चला जाता है; वृद्ध आँख मींचकर भजन करने लगता है, मुनीम और डाक्टर बैठ जाते हैं।]

बडा मुनीम—वात यह है 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाला काम है यहाँ तो। तुम्हारी जान-पहचान के वल्कि तुम्हारे ही एक रिश्तेदार इनकमटैक्स के अफसर हैं। उनसे कहो, हमारे काम मे कुछ रियायत करें तो सेठजी तुम्हे भी देगे और उन्हे भी कुछ दे देंगे।

चाँदीराम—हम कुछ मुफत तो काम नही कराते। मामला अटक रहा है। चलो यही सही

बडा मुनीम—वात को समझा करो। ये बातें खुलकर नही की जाती डाक्टर साहव !

डाक्टर—[सोचता हुआ] हाँ, है तो सही, मेरे साले के चाचा का मामा है। मैं आज ही जाऊँगा। देखूँगा

चाँदीराम—हाँ, जाओ, अभी जाओ। नही तो गाडी ले जाओ। तुम कोई पराये तो नही, अपने ही तो हो। दीनू, ड्राइवर से कह दे गाडी तैयार कर लावे। तुम भी जाओ मुनीमजी ! राम राम राम। काम बनाओ पहले। दस बढ जाएँगे, पक्के रहे।

बडा मुनीम—चलो फिर, न जाओ आज अस्पताल, कम्पाउण्डर तो है ही। आओ चलें।

चाँदीराम—हाँ, जाओ बेटा, जाओ। अस्पताल की क्या बात है ? काम होना चाहिए। [बुड्ढा उठकर भीतर चला जाता है। डाक्टर और मुनीम भी बाहर चले जाते हैं।]

[मुनीम आपस मे बातें करते हैं]

रामधन—हाँ, बोल न और आगे ?

घीसालाल—बस, अब नही। थक गया मैं तो।

रामधन—मालूम है, मुनीमजी क्या कह गये है, सारी रोकड आज ही उतारनी है।

घीसालाल—मुनीमजी का तो एक आना हिस्सा है। हम क्यो मरें ? पैंतीस रुपये मिलते हैं, वे भी सूखे। अब मैं नही कर सकता। [बही पटक देता है।]

रामधन—काकाजी आते होगे। देखेंगे कि चला गया घीसालाल तो शामत आ जाएगी तेरी।

घीसालाल—[कडककर] सामत क्यो ? क्या काम नही करा जो सामत आ जाएगी ? सुनो मुनीमजी ! इतना ब्लैक से कमाया सेठ ने। हमको क्या मिला ? एक कुर्ता, एक धोती और दस रुपये। बस !

रामधन—और क्या लूटेगा ? फोकट का माल है। दिन-रात एक करके अफसरो की आँख मे धूल झोककर कमावे है तो क्या लुटाने के लिए ?

घीसालाल—तो तुम्हारा पेट भरे तो तुम करो। मुझसे तो जितना होगा, करूँगा। इतनी मुसीबत है। गुजारा तो होवे नहीं हे। मन्दा है, नही तो फाटके मे से ही कुछ मिल जाता !

रामधन—फाटका मत खेला कर घीसालाल, पीशा बरबाद होवे है। मैं तो पिछले महीने चार सौ भर चुका हूँ [सोचकर], और तू कहे तो ठीक ही है। ६० रुपल्ली मे होवे क्या है? पर अब कहाँ जायँ? सत्तर तो कोई देने से रहा। हाँ, इनमे होली-दिवाली पर कुछ मिल जाय हे बस, यही। मालूम है कितना फायदा होगा सेठ को अगर बच गए तो ...

घीसालाल—कितना होगा भला?

रामधन—[धीरे से] दस लाख से ऊपर तो सिर्फ कपडे और लोहे मे।

घीसालाल—[आश्चर्य से] इतना? तभी, तभी मुनीमजी! मेरा मन करे है सब बतला दूं जाकर पुलिस को।

रामधन—पागल हो गया है घीसालाल, ऐसा नही करते। जिस हाँडी मे खाना उसी मे छेद करना, धर्म नही है अपना।

घीसालाल—[क्रोध से] तो बेईमानी करना धर्म हे? सरकार को धोखा देना, लोगो को लूटना धर्म है? कहाँ है धर्म? क्या ऐसा धर्म मानने योग्य है? मै ऐसा धर्म नही मानता। जी तो ऐसा करे है अपना गला घोट लूं। चार महीने से घरवाली बीमार है, उसकी दवा-दारू को पैसा नही है। माँ पिछले दिनो जीने से गिर पडी, उसका पाँव ठीक नही होवे। न वखत पै रोटी न कुछ, कहाँ से लाऊँ इतना पैसा? धर्मार्थ औषधालय से दवा लाता हूँ पर फायदा हो तो! पिछले दिनो बहू की कण्ठी बेची। [आँखों मे आँसू भर आते हैं] मर जाय तो पाप कटे।

रामधन—तो दूसरी कर लेगा, क्यो? [हँसता है, फिर गम्भीर हो कर] तू ठीक कहे है घीसालाल, यहाँ भी यही हाल है। तीन बच्चे हैं, बीवी और आप, साठ रुपये तनखा, पर क्या करूँ? एक तरफ खाई दूसरी तरफ कुआँ। बैठे हैं, शायद कभी अच्छे दिन आयँगे, किस्मत होगी तो और पेट भूख ही मारी गई है।

घीसालाल—किस्मत कभी नही होगी मुनीमजी, गधे की किस्मत मे कभी नही लिखा कि वह आराम से खाएगा। गरीब की किस्मत नही होती, किस्मत होती है मालदार की।

रामधन—तो फिर तू ही मालदार बनके दिखा! ये तो ईश्वर के खेल हैं—कोई सुखी तो कोई दुखी, कभी रात, कभी दिन।

घीसालाल—मैं ये बातें नही मानता। ईश्वर को क्या पड़ी है कि किसी को मालदार और किसी को गरीब बनावे। यह तो हमारी समाज-व्यवस्था की कमजोरी है।

रामधन—अरे, तू तो बड़ा पंडत हो गया है घीसालाल, समाज-अमाज की वार्ता सीख रह्या से रे! सुन मेरे भाई, ये माना कि देश मे खूब अनाज होवे तो फिर किसी बात की कमी नही रहेगी। अनाज के तोड़े से ही सब चीजें महँगी हैं।

दीनू—घीसालाल जी, तुम कचौरी-अचौरी मँगाओगा क्या? ताजी बन रही है, आज तो मैं भी एक खा ही आया। मजेदार है मुनीम घीसालाल।

घीसालाल—मैं क्या मुंह ले के कचौरी खाऊँगा दीनू, ये तो मुनीम जी का काम है। सूखी दो रोटी मिल जायँ आजकल तो वही बहुत है भाई। अच्छा मैं चला, दवा लानी है। [जाता है]

रामधन—जा हम भुगत लेंगे और क्या, बेचारा दुखी है, इसीलिए चिड़चिड़ा रहा है।

[एक-दो खद्दरधारी जनों का प्रवेश]

एक व्यक्ति—[पास जाकर] सेठजी कहाँ है?

रामधन—दीनू, ओ दीनू, देख सेठजी को आपके आने की खबर कर दे। आप बैठो। भीतर गये हैं।

दीनू—बैठो साब, बैठो, मैं अभी बुलाता हूँ।

[दोनो बैठ जाते हैं]

लालचन्द—कम-से-कम पाँच सौ लेना है सेठ से।

नेमिचन्द—हाँ, और क्या! तभी तो पूरा होगा। आखिर सर्वोदय समाज के उत्सव का खर्च तभी तो निकलेगा। इतने नेता आ रहे है। सम्भव है जवाहरलालजी आ जाएँ। फिर तो

लालचन्द—उम्मीद तो है हमने जिनको बुलाया है वे सभी आ जाएँगे। अच्छा भला तुमने रतनलाल को दिल्ली जाने का कितना खर्च दिया है?

नेमिचन्द—दो सौ लेकर गये है।

लालचन्द—क्यो, इतना क्यो ? दो आदमी और दो सौ ! दो सौ तो बहुत हैं। अगर वे इण्टर मे भी जाएँ तो भी जाने-आने के पचास बहुत हैं।

नेमिचन्द—वे गये हैं सेकण्ड मे और ठहरेंगे होटल मे। फिर वहाँ ताँगे मे तो चलने से रहे, टैक्सी के विना काम नही चलेगा। दूर जो बहुत है !

लालचन्द—हूँ, [सोचता है] फिर नेताओ के ठहराने और खाने-पीने का प्रवन्ध मेरा रहा।

नेमिचन्द—मेरा और तुम्हारा दोनो का नाम है।

लालचन्द—सो हम कर लेंगे, तुम निश्चिन्त रहो।

दीनू—सेठजी आ रहे हैं। [सेठ का प्रवेश]

सेठ—[देखते ही हाथ जोडकर] धन्य भाग ! [हँसता है, हाथ मिलाकर] यह सूर्य किधर से उदय हुआ ? धन्य भाग, धन्य भाग ! आइए बैठिए।

नेमिचन्द—हाँ, साहब, लालचन्दजी सूर्य के समान है तो मैं पुच्छल तारा हूँ। [हँसता है]

सेठ—मैं आप दोनो को सूर्य मानता हूँ। वात यह है कि अधिक प्रकाश मे सूर्य एक है या दो—यह जानना मेरे लिए कठिन है। मेरे लेखे तो आप दोनो ही मेरे भगवान् है। कुछ जल-वल मँगाऊँ ? अरे दीनू, देख वढ़िया-सी मिठाई तो ला, कुछ नमकीन भी और आध सेर बडे अगूर और दो सोडे की बोतलें। जा ! और सुनाइए, क्या समाचार हैं ? वहुत दिनो वाद आपके दर्शन हुए। गाधी-जयन्ती के इस वार क्या प्रोग्राम है ? क्या वताऊँ, आजकल मैं गाधीजी की आत्मकथा पढ रहा हूँ, वडा मजा आवे है। खूब थे गाधी वावा !

लालचन्द—उसी के सम्वन्ध मे आपको कष्ट देने आये हैं। गाधीजी तो इस युग के अवतार हैं, अवतार !

नेमिचन्द—हम लोगो के तमाम काम आपके ही सहारे हैं। इस बार गाधी-जयन्ती के सप्ताह मे सर्वोदय समाज की मीटिंग, प्रार्थना, प्रवचन, चरखा-दगल, खादी सप्ताह तथा बच्चो के भी कुछ प्रोग्राम करने की

सलाह है। ये तो कह रहे हैं कि एक कवि-सम्मेलन भी किया जाए, जिसमे राष्ट्रीय भावना की कविताओ का पाठ हो। [घिघियाकर] उसी के लिए'' पहले आप यह वताइए कि आप खादी सब घर के लिए खरीद रहे हैं या नही ? हम खादी का प्रचार कर रहे है।

सेठ—वहुत अच्छा प्रोग्राम है। खादी के लिए रही बात, सो मैं तो आप जानते है प्राय सुदेशी ही पहनता हूँ। फिर आप कहेगे तो उन दिनो के लिए खादी के कपडे वनवा लूंगा। वैसे खादी मुझे वहुत पसन्द है, उन दिनो जव महात्माजी का दौरा हुआ था मैं तभी से खद्दर पहनने लगा था। यह तो सरकार के लोगो से मिलने के कारण वदलना पडा। अव तो खादी का निश्चय ही समझिए।

लालचन्द—तो मतलव की बात यह है कि इस सव काम के लिए आपको कष्ट देना है।

[दीनू मिठाई लाता है]

सेठ—लीजिए, पहले जलपान कर लीजिए। पानी ला रे, हाथ धुला।

दोनो—आप भी तो लीजिए सेठजी !

सेठ—नही, मुझे तो क्षमा करें। अभी भीतर से जलपान करके ही चला आ रहा हूँ। हाँ, आज्ञा कीजिए। [दोनो खाते हैं]

लालचन्द—हाँ, तो हमने ५०० रुपये आपके नाम डाले हैं।

नेमिचन्द—अरे तो ५०० रुपये से भी क्या कम होगे ? सेठजी से मैं तो हजार । यही तो हमारे नगर के दानी है।

सेठ—पाँच सौ तो वहुत हैं। ही ही ही सौ लिख लिजिए, सौ।

लालचन्द—[मुँह मे मिठाई भरे हुए] नही सेठजी, ५०० रुपये से कम नही।

नेमिचन्द—ये अवसर वार-बार नही आते हैं। हमारा विश्वास है, जवाहरलालजी भी आएँगे।

सेठ—आप मालिक है, दस हजार लिख देंगे तो भी देना पडेगा। आप ही तो सरकार हैं। सव आपका ही तो है। इधर इनकमटैक्स वाले तग करते है, वाजार वैसे मन्दा है, रोजगार तो रह ही नही गया, खर्च बेहद ! सच मानिए लालचन्दजी, पेट भरना मुश्किल है। वस, किसी

तरह इज्जत बची रह जाय यही बहुत है, नही तो पहले आपने देखा होगा · ·

लालचन्द—न पाकिस्तान बनता, न हमारे देश की यह दुर्दशा होती। इधर तो पाकिस्तान से इतने आदमियो का आना, उधर अनाज की कमी। क्या किया जाए ?

नेमिचन्द—अरे साहब, हमी से पूछिए क्या हालत है। इतना त्याग किया, जेल गये, मार खाये, दुख सहे, जब कुछ बनने का अवसर आया तो और लोग आगे आ गये। वे मेम्बर बने। जिनके घर मे भूँजी भाँग नही थी आज वे मोटरो मे दौडते हैं, जिनके झोपडे नही थे आज वे कोठियो मे रहते हैं।

लालचन्द—चलो जाने दो, अपने को क्या नेमिचन्दजी ? हमारा काम है सेवा करने का सो सेवा करते हैं। स्वराज्य तो हमो ने दिलाया है।

नेमिचन्द—इसमे क्या शक है ? पर नही, मैं तो स्पष्टवक्ता हूँ, लगा-लेसी नही रखता। साफ है, हमने किससे कम त्याग किया है ? मैंने हजारो आदमियो मे खडे होकर व्याख्यान दिये हैं। लोग मान गये कि हाँ है कोई बोलने वाला। पर । और तुमसे क्या छिपा है ?

सेठ—सो तो है ही। आपका त्याग किससे कम है ! हम जानते हैं। पर एक बात देखिए [जरा पास आकर] वो वीविंग मिल के शेयर जो आपने खरीदे हैं यदि मिल सकें तो आधे शेयर मुझे भी खरीदवा दे। मै ले लूंगा।

नेमिचन्द—क्यो नही, आज ही मैं कह दूंगा। यदि आप मेरे शेयर खरीदना चाहें तो वे भी सस्ते दामो पर· पर· ।

सेठ—नही नही, · मैं चाहता हूं हम लोग अपने ग्रुप के आदमी ले ताकि मिल के ऊपर हमारा अधिकार हो। सुना है, लालचन्दजी कोठी बनवा रहे है ?

लालचन्द—हां अभी तो शुरू ही की है।

नेमिचन्द—कोठी तो मैं भी एक बनवाना चाहता हूँ।

सेठ—क्या हर्ज है, आपने क्या कम कष्ट उठाये हैं ?

लालचन्द—हां, फिर क्या निर्णय किया आपने ? देखिए हम पाँच सौ से [घिघियाकर] कम न लेंगे।

सेठ—जैसी आपकी मर्जी ! मैं क्या आपसे बाहर हूँ ? पर एक बात है·

नेमिचन्द—कहिए ! हाँ, लिखो पाँच सौ सेठ छीतरमलजी के नाम। चेक दीजिएगा या ?

सेठ—जैसा कहे। रुपया भी हाजिर है।

लालचन्द—रुपया ठीक रहेगा, क्यो नेमिचन्दजी ?

नेमिचन्द—हाँ, और क्या ? कौन झंझट मोल ले और भुनाने जाय ?

सेठ—मुनीमजी, रामधनजी, ५०० रु भीतर से ला दो। काकाजी से गुच्छा ले लेना। और आपने हाथ तो धोए ही नही। दीनू, हाथ धुला और पान ला। सिगरेट पियेंगे।

रामधन—जी, बहुत अच्छा ! [जाता है]

लालचन्द—हाथ तो धुले-से ही हैं। लाओ, फिर भी धो ही लें।

दीनू—[हाथ धुलाने के बाद] कौन-सी सिगरेट लाऊँ ?

लालचन्द—देख, पाँच सौ पचपन नम्बर की सिगरेट मिले तो एक पैकिट ले आना।

नेमिचन्द—मेरे लिए तो तू एक सिगार ले आ। बर्मी सिगार कहना। बारह आने की एक आवेगी। क्या बताऊँ, सिगार की आदत पड गयी है। बडे-बडे आदमियो मे मिलना-बैठना होता है। क्या करूँ ? पीता हूँ—पीता क्या हूँ, पीना पडता है।

सेठ—हाँ, क्या हरज है, यह तो है ही। ला जल्दी [दीनू जाता है]

लालचन्द—और सुनाओ सेठजी !

सेठ—क्या सुनाएँ पण्डितजी, आपके राज मे पिटे जा रहे हैं। न कोई सुनता है न देखता है। किसी ने शिकायत कर दी कि हमने ब्लैक मार्कीट किया है, सो परसो इनकमटैक्स कमिश्नर ने बुलवाया था। आज भी बुलाया था। मैंने तो कह दिया—साहब, आप माई-बाप हैं। हमारी जिन्दगी कांग्रेस की सेवा करते बीती है। फिर भला हम क्यो ब्लैक मार्कीट करने लगे। बहियाँ माँगी हैं, परसो रात को पुलिस के आदमी आ गये। खैर, वह तो मैंने टाल दिये जैसे-तैसे। नाक में दम है साहब ! इसीलिए प्रार्थना है

नेमिचन्द—क्या बताएँ इन कलक्टरो, कमिश्नरो के मारे नाक मे दम

है। भला आप जैसे दानी को तग करना क्या ठीक है? अच्छा, आप घबरावें नही, मैं उनसे मिलूंगा। विश्वास है मान जाएँगे, नही तो ऊपर जाना पडेगा।

लालचन्द—एक तरह से देखा जाए तो हममे और उनमे सघर्ष तो चल पडा है। जो हम कहते हैं उन्होने उसे न मानने की कसम खा ली है। हम कहते है, अरे भाई, हम लोग घास तो नही खाते, आखिर गाधीजी के मार्ग पर देश को चलाना चाहते है। अब वैसी ब्यूरोक्रेसी नही चलेगी। समझे? पर बडी मुश्किल है। हमे तो कोई पूछता ही नही।

नेमिचन्द—तो इसमे किसी का अहसान नही है। जिन्होने स्वराज्य दिलाया, स्वतन्त्रता कायम की, वे लोग साधारण नही हैं। आज भी काग्रेस का राज्य है, उसी की हुकूमत है।

सेठ—सो तो है ही, सो तो है ही, तुम जानो, मानना पडेगा। हम लोग भी आपके ही सहारे हैं श्रीमान् जी! हाँ, तो मैं चाहता हूँ मैं जो स्टेटमेट भेजूं वह स्वीकार हो जाय। वैसे मै अपनी तरफ से कोशिश कर रहा हूँ फिर भी ‥ । मैं आपसे मिलना भी चाहता था इसी सम्बन्ध मे।

लालचन्द—आपका काम हमारा काम है सेठजी, आप निश्चिन्त रहे, आपको आँच नही आ सकती।

सेठ—कृपा है आपकी। आप ही के सहारे हम लोग जी रहे हैं और क्या? मैं जाऊँ, देखूं रुपया क्यो नही लाया मुनीम। जरा क्षमा ।

[चला जाता है।]

नेमिचन्द—हाँ हाँ, जाइए, [लालचन्द से] सेठ ने कमाया जरूर है ब्लैक मे।

लालचन्द—कम-से-कम सात-आठ लाख। पर अपने को क्या? आडे वक्त काम देता है, सहायता मिलती है। पिछले दिनो लोहा इसी से लिया, अब कोठी के लिए जरूरत पडेगी तो

नेमिचन्द—गाधीजी देश के धनियो की रक्षा आवश्यक मानते थे।

लालचन्द—खैर, गाधीजी की धनियो की रक्षा का मतलब दूसरा था। जो भी हो। काग्रेस का सगठन दृढ करने के लिए साधारण लोग तो रुपया ने से रहे। रुपया हमको इन्ही से लेना पडेगा, इसलिए इनकी रक्षा भी

करनी आवश्यक है। मेरी सलाह है, मैं भी एक मोटर खरीद लूँ। अब उसके विना काम नही चलता। आपने तो खरीद ली है।

नेमिचन्द—जरूर, यही क्या कम है कि सेठ मे इतनी देश-भक्ति है और आवश्यकता पडने पर भरपूर सहायता करता है। हमेशा आडे समय मे सहायता के लिए तैयार रहता है।

[सेठ का आना]

सेठ—लीजिए, देर हो गयी, क्षमा करें। [दोनों व्यक्ति नोट जेव मे डालकर नमस्ते करते हुए चल देते हैं। सेठ उनको जाता हुआ देखता रहता है। चले जाने के बाद] ये हैं काग्रेस के लोग ! मेरे समान स्वार्थी और अर्थ-लोलुप ! इनके भी वैसे ही ठाट हैं, मकान, कोठी, मोटर, नौकर-चाकर, फिर मजा यह कि कुछ भी नही करते। व्यापार कोई नही करते। तो क्या रुपया आकाश से फूट पडता है ? अभी-अभी नेमिचन्द ने दस हजार के शेयर खरीदे हैं। और भी हिम्मत है ! मैं ब्लेक मार्केट करता हूँ, ये सहायता देते हैं। ये स्वय भी उतने ही डूवे हुए है जितना मैं। फिर मैं क्यो मानूँ कि मैं ही पाप करता हूँ ? पाप, पाप कौन नही करता ? कौन नही करता ? मैं पाप करता हूँ तो धर्म भी करता हूँ, दान भी देता हूँ, मन्दिर मे पूजा भी करता हूँ, ब्राह्मणो को भोजन भी कराता हूँ, गरीवो को अन्न भी वॅटवा देता हूँ। मैं पशु-पक्षियो की सेवा करता हूँ। उनके लिए मैंने अस्पताल खोल रखा है। उनकी वीमारी दूर होती है, क्या यह सव पाप धो डालने के उपाय नही हैं ? [टहलता रहता है] इनकमटैक्स वालो को ठीक करना होगा। वे अव पुराने हिसाव की चिन्दी भी नही पा सकते। यह नेमिचन्द और लालचन्द को दिया गया रुपया ही मुझे वचाएगा। मैं आज ही खद्दर खरीदकर कपडे वनवा लूंगा। मैंने गलती की जो अव तक खद्दर के कपडे नही पहने। पहनने होंगे, यही युग का, समय का, तकाजा है—जैसी वहे वयार पीठ तव तैसी दीजे। दीनू ! दीनू !

दीनू—हाजिर सेठजी !

सेठ—वडे मुनीमजी और डाक्टर कहाँ गये दीनू ?

दीनू—वडे मुनीमजी के साथ डाक्टर को काका साहव ने वाहर भेजा है सेठजी !

सेठ—काका साहब ने" हाँ, ठीक है, जा ! [अपने आप] काका साहब ने भेजा है"'ठीक है। यदि निशाना लक्ष्य पर बैठ गया' 'सारा मामला इन क्लर्कों के हाथों मे ही होता है। अफसर तो सरकार की प्रेस्टिज-प्रकाश का बल्ब है जो अपनी पावर के अनुसार चमकता है। कोई पाँच का, कोई दस का और कोई पच्चीस का। यदि उस बल्ब के ऊपर इकन्नी रखकर तार से जोड दिया जाए तो दूर तक अँधेरा फैल जाता है। बिजली फ्यूज हो जाती है। इसी तरह रुपये का जोड दूर तक प्रेस्टिज के प्रकाश को धुंधला कर देता है। चाहिए रुपये को वहाँ जोडने की योग्यता। [टहलता हुआ] लोग कहते हैं, हम लोग ब्लैक मार्केट करते हैं, हम सरकार के शत्रु है, देश के दुश्मन हैं। गरीबो का खून चूसकर मोटे हुए हैं। कितनी गलत बात है ! क्या हमने गरीबी पैदा की है ? जिसमे योग्यता हो वह आगे आवे। हम में नही गरीब हो जाते, उनके दिवाले निकल जाते ? फिर वे अपनी योग्यता चतुराई से बडे बन जाते हो झूठ है, सब झूठ है। रुपये को पकडने से रुपया मिलता है। उसके लिए कितने हाथ-पैर मारने पडते हैं, यह कौन जानता है ? कितने दिनो से मैं परेशान हूँ ? न रात को नीद आती है न दिन को चैन ! कितनी परेशानी है। रुपया कमाना ही कठिन नही है उसको लुटेरो, डाकुओ, चोरो और सरकारी पुर्जो मे बचाकर रखना भी एक कठिन काम है। [टहलते हुए खडा होकर देखता है] कौन हैं, कौन हैं ये लोग ! एक लडकी, एक लडका और यह आदमी भी उनके साथ है ? कौन हैं, आप क्या चाहते है ? अरे, पुलिस के दरोगा भी हैं। आइए, दरोगाजी साहब, बैठिए।

व्यक्ति—सेठजी, दया कीजिए। कुछ दिन और ठहर जाइए। हम आपका सब किराया चुका देंगे, मकान खाली कर देंगे।

सेठ—क्या तुम मेरे किरायेदार हो ?

व्यक्ति—जी, ये दरोगा हमारा असबाब मकान से बाहर निकालकर फेंक रहे है।

सेठ— तो ठीक ही कर रहे है। इधर एक साल से तुमने किराया भी तो नही दिया है !

व्यक्ति—वह तो आपने ही किराया नही लिया तो हम क्या करते ? खैर, मेरी प्रार्थना है कि आप कुछ दिन और ठहर जाएँ तो मैं किराया दे दूंगा।

सेठ—[क्रोध से] मैं किराया नहा लूंगा। आप पिचहत्तर देते है, मैं सौ लूंगा। यही मेरी-आपकी लडाई है। इसलिए यह सब झगडा हुआ है।

व्यक्ति—देखिए, सौ देने की मेरी शक्ति नहीं है।

सेठ—तो आप मकान छोड दीजिए। मेरा मकान अब डेढ सौ पर उठेगा।

व्यक्ति—यह तो ज्यादती है सेठजी !

सेठ—कचहरी ने फैसला कर दिया है। आपको जो कुछ करना था, कर चुके। जाइए, मेरा मकान खाली कर दीजिए। मैंने ही पुलिस से कहा है। मैं और नही ठहर सकता।

व्यक्ति—मैं मानता हूँ सरकारी न्याय आपके पक्ष मे है। किन्तु देखिए, मकान तो मिल नही रहा, हम लोग कहाँ जाएँ ?

सेठ—तो मैंने क्या ठेका ले रखा है ससार का ? क्यो दरोगाजी !

दरोगा—मैं अभी आया सेठजी, आप फैसला कर लीजिए। [जाता है]

व्यक्ति—मैं मनुष्यता के नाते आपसे प्रार्थना करता हूँ। मुझे कुछ दिन की मोहलत दीजिए। मैं आपका मकान खाली कर दूंगा।

सेठ—[दरोगा से] जी बहुत अच्छा। आप हो आइए ! [व्यक्ति से] आपको सरकार ने पिछले चार मास मे मकान खाली करने की सूचना दे रखी है !

व्यक्ति—मैं मानता हूँ। मैंने भी मकान ढूंढने मे कोई कसर उठा नही रखी।

सेठ—फिर आगे मकान मिल ही जाएगा, इसका क्या प्रमाण है ?

व्यक्ति—लेकिन इस तरह तो मैं कही का न रहूँगा। मेरे बच्चे है, बीवी है, मैं भी आखिर प्रतिष्ठित व्यक्ति हूँ। इसलिए आपसे कुछ दिन ठहर जाने की प्रार्थना है।

सेठ—सुनिए श्रीमान्, मैं ऐसे अवसर को हाथ से नही जाने दे सकता। अव तो मेरा मकान खाली करना ही पडेगा। या फिर या फिर

व्यक्ति—या फिर क्या, कहिए ? जो कुछ हो सकेगा, मैं प्रयत्न करूँगा। मैं वहुत दुखी हूँ सेठजी, आप दानी हैं, नगर मे आपका नाम है। आप तो पशु-पक्षियों पर भी दया करते हैं, फिर मै तो मनुष्य हूँ।

सेठ—मैं जानता हूँ दया कहाँ करनी चाहिए। नही, कुछ नही, जाइए, आप मकान खाली कर दीजिए। मै कुछ भी नही सुनना चाहता। [वच्चे रोने लगते हैं, व्यक्ति दु खाभिभूत होकर चुपचाप खडा रहता है।]

व्यक्ति—मैं एक सप्ताह का समय चाहता हूँ। उस समय तक खाली कर दूंगा।

सेठ—दीनू, हटाओ इन्हे। मुझे फुरसत नही है। [बच्चे और जोर से रोने लगते हैं, व्यक्ति के चेहरे पर निराशा की रेखाएँ उभरती हैं।] जाइए साहव, थानेदार साहब आ रहे हैं। अच्छा है उनके पहुँचने के पहले आप मेरा मकान छोड दे।

व्यक्ति—माना मैं किरायेदार हूँ, पर हूँ तो मनुष्य ! मेरे भी वच्चे है, पत्नी है। ऐसी अवस्था मे आप ही सोचिए मैं इतनी जल्दी कहाँ जा सकता हूँ ? [हाथ जोडकर] कृपा करे।

सेठ—[उसी धुन मे] आप भी अजीव आदमी है ! मैं कह रहा हूँ मेरा सिर न खाओ। जाओ, मैं मकान मे आपको नही रहने दे सकता।

व्यक्ति—तो आप किसी प्रकार मुझ पर कुछ दिनो के लिए भी दया नही दिखा सकते ? [गिड़गिडाता है, वच्चे रोने लगते हैं। सेठ एक वार वच्चो को देखता है। फिर कुछ सोचता है।]

सेठ—नही, नही दिखा सकता दया, यह नही हो सकता। छह महीने का किराया दे सकते हैं अभी आप ?

व्यक्ति—मेरे पास छह मास का किराया नही है।

सेठ—आपकी पत्नी का गहना तो है। वही ले आइए।

व्यक्ति—सेठजी उसमे से वहुत-सा तो पिछले दिनो पत्नी-बच्चो की वीमारी मे खर्च हो चुका है। इधर मैं कुछ दिनों से वेकार भी हूँ। नौकरी की तलाश में हूँ'

सेठ—मैं ऐसे बेकारो को मकान मे नही रहने दे सकता। मैं जानता हूँ तुम लोग मक्कार हो।

व्यक्ति—[भुनभुनाकर, विवशता से] मैं भी प्रतिष्ठित आदमी हूँ। दया कीजिए। मेरी-आपकी किराया बढाने पर ही तो लडाई हुई है। फिर मैं जितना किराया ठहरा था उतना तो देता ही रहता हूँ। आपने ही उतना किराया नही लिया।

सेठ—[कोई उत्तर न पाकर] बहुत बकवास मत करो। जाओ। यदि पुलिस द्वारा मकान से बाहर सामान फेंक दिये जाने का डर हो तो अभी जाकर खाली कर दो।

व्यक्ति—ऐसे मे कहाँ जाऊँ सेठजी ?

सेठ—जहाँ सीग समाये, जहाँ जगह मिले, मैं क्या जानूँ ? मेरा सिर न खाओ।

[काका सेठ आता है।]

चांदीराम—छीतर, हरगिज इस बेईमान का कहना न मानियो। अब मकान सवा सौ मे उठेगा [राम राम राम राम] तुम्हे कोई हया-शरम नही है ? तुम्हारे साथ दया करना फिजूल है।

व्यक्ति—सेठजी, मै आपके हाथ जोडता हूँ। थोडे दिनो की मोहलत दे दें।

दोनों—नही, नही हो सकता। [काका सेठ कडककर] जाओ मकान खाली करो। [राम राम राम राम]

सेठ—तुम चाहे लाख कहो, मकान मैं नही दे सकता। मैं अभी थानेदार को टेलीफोन करके दरोगा को बुलाया हूँ कि पुलिस की सहायता से मकान खाली कराओ।

[व्यक्ति विवशता और भविष्य के अन्धकार से नीचे देखने लगता है। बच्चे बाप की अवस्था देख और भी जोर से रोने लगते हैं। सेठ चिल्लाता है।]

क्या शोर मचा रक्खा है ? जाता नही। [टेलीफोन उठाता है। डाक्टर, बडा मुनीम तथा इनकमटैक्स का एक अफसर प्रवेश करते है। सेठ देखता है, वह व्यक्ति रामचन्द्र अफसर से बड़े तपाक से मिल रहा

है। अफसर बच्चो के सिर पर हाथ फेर रहा है और रामचन्द उससे टूटे-फूटे स्वर मे कुछ कहने को उद्यत है]

बडा मुनीम— क्या ये आपके कोई '

अफसर—ये मेरे मित्र रिश्तेदार''राम

बडा मुनीम—कोई बात नही, आप मकान मे ठहरिए रामचन्दजी, कोई बात नही। मैं सेठजी से '

सेठ—[टेलीफोन जैसे का तैसा छोडकर] आइए-आइए, जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। रामचन्दजी, कोई बात नही। आप खुशी से मकान मे रहिए। मैं अभी टेलीफोन पर थानेदार से कहे देता हूँ कि मकान खाली कराने की जरूरत नही है। आइए, आप लोग यहाँ आइए। [अपने-आप कुरसी ठीक करने लगता है। टेलीफोन उठाकर] मैं छीतरमल बोल रहा हूँ जी, अभी मकान खाली न होगा। कष्ट न करें। [रिसीवर रख देता है।]

चाँदीराम—अरे दीनू, जाकर बाजार से बढिया-सी मिठाई तो ला।

सेठ— देख दीनू, बगाली मिठाई लाना। जा जल्दी [बच्चे सिसकते हुए चुप हो जाते हैं। रामचन्द स्तब्ध। बाकी लोग जैसे-के-तैसे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, जाकर कुर्सियों पर जम जाते हैं। काका सेठ जोर-जोर से गोमुखी के भीतर माला फेरने लगता है। सेठ उन बच्चो के सिर पर हाथ फेरता है।] कोई बात नहीं, कोई बात नही। अपना ही घर है। कोई बात नही। जा, जल्दी जा दीनू! माफ करना, गलती हो गयी। जा, दीनू गया कि नही? रे ए ए' !

[पर्दा गिरता है]

लक्ष्मी का स्वागत

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

पात्र

रौशन	:	एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र	:	उसका मित्र
भाषी	:	उसका छोटा भाई
पिता	·	रौशन का बाप
माँ	.	रौशन की माता
अरुण	·	रौशन का बीमार बच्चा

[दालान मे सामने की दीवार से मेज लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पडी है। मेज पर बच्चों की किताबें बिखरी पडी हैं। दीवार के दायें कोने मे एक खिडकी है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है; बायें कोने मे एक दरवाजा है, जो सीढ़ियो मे खुलता है। दायीं दीवार मे एक दरवाजा है जो कमरे में खुलता है, जहाँ इस वक्त रौशन का बच्चा अरुण बीमार पडा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तसवीरें कीलों से जडी हुई हैं। छत पर कागज का एक पुराना फानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की मे से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है। हवा की साँय-साँय और मेह के थपेडे सुनायी देते हैं।

कुछ क्षण बाद वह खिडकी का पर्दा छोडकर कमरे मे घूमता है, फिर जाकर खिडकी के पास खडा हो जाता है—और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

दायी ओर के कमरे मे रौशनलाल दाखिल होता है।]

रौशन—[दरवाजे को धीरे से बन्द करके] डाक्टर अभी नही आया ?

सुरेन्द्र—नही।

रौशन—वर्षा हो रही है।

सुरेन्द्र—मूसलाधार ! इन्द्र का क्रोध अभी शान्त नही हुआ।

रौशन—शायद ओले पड रहे हैं।

सुरेन्द्र—हाँ, ओले भी पड रहे है।

रौशन—भाषी पहुँच गया होगा ?

सुरेन्द्र—हाँ, पहुच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले ! बाजारो मे घुटनो तक से कम पानी न होगा।

रौशन—लेकिन अब तक उन्हे आ जाना चाहिए था। [स्वय बढकर, खिडकी के पर्दे को उठाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है] अरुण की तबीयत गिर रही है।

सुरेन्द्र—[चुप]

रौशन—उसकी साँस जैसे हर घडी रुकती जा रही है, उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है, उसकी आँखे खुली है, पर वह कुछ कह नही सकता, बेहोश-सा, असहाय-सा चुपचाप बिटर-बिटर ताक रहा है। आँखे लाल और शरीर गर्म है। सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है, तो उसे बडा ही कष्ट होता है। मेरा कलेजा मुंह को आ रहा है। क्या होने को है, सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र—हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जाएगा। देखो, दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है।

[दोनो कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की सांय-सांय]

रौशन—नही, कोई नही, हवा है।

सुरेन्द्र—[सुनकर] यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

[रौशन बढकर खिडकी मे देखता है, फिर वापस आ जाता है]

रौशन—सामने के मकान का दरवाजा खटखटाया जा रहा है।

[बेचैनी से कमरे मे घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत मे हिलते हुए फानूस को देख रहा है।]

रौशन—सुरेन्द्र, यह मामूली बुखार नही, यह गले की तकलीफ साधारण नही, मेरा तो दिल डर रहा है, कही अपनी माँ की तरह अरुण भी तो धोखा न दे जाएगा ? [गला भर आता है] तुमने उसे नही देखा, साँस लेने मे उसे कितना कष्ट हो रहा है !

[हवा की साँय-साँय और मेह के थपडे]

रौशन—यह वर्षा, यह आंधी, यह मेरे मन मे होल पैदा कर रहे है। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, यह मौत की आवाजे……

[बिजली जोर से कडक उठती है। दरवाजा जरा-सा खुलता है। माँ झाँकती है।]

माँ—रौशी, दरवाजा खोलो। आओ, देखो शायद डाक्टर आया है।

[दरवाजा बन्द करके चली आती है।]

रौशन—सुरेन्द्र ……

[सुरेन्द्र तेजी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे मे घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भाषी प्रवेश करते हैं। भाषी के हाथ मे इंजेक्शन का सामान है।]

डाक्टर—क्या हाल है बच्चे का ?

[बरसाती उतारकर खूंटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोछता है।]

रौशन—आपको भाषी ने बताया होगा। मेरा तो हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और साँस मे तकलीफ हो गयी और आज तो वह बेहोश-सा पडा है, जैसे अन्तिम साँसो को जाने मे रोक रखने का भरसक प्रयास कर रहा है।

डाक्टर—चलो, चलकर देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे मे चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज आती है। माँ तेजी से प्रवेश करती है।]

माँ—भाषी ! भाषी !

[बीमार के कमरे से भाषी आता है।]

माँ—देखो भाषी, बाहर कौन दरवाजा खटखटा रहा है ? [आँखों मे चमक आ जाती है] मेरा तो खयाल है, वही लोग आये है। मैने रसोई की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिये और बरसातियाँ पहने

भाषी—वही कौन ?

माँ—वही, जो सरला के मरने पर अपनी लडकी के लिए कह रहे थे। बडे भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट मे उनका बडा काम है। इतनी वर्षा मे भी

[जोर-जोर से कुण्डी खटखटाने की निरन्तर आवाज आती है। भाषी भागकर जाता है, माँ खिडकी मे जा खडी होती है। बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र—भापी कहाँ है?

माँ—बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[सुरेन्द्र फिर तेजी से वापस चला जाता है।]

[माँ एक बार पर्दा उठाकर खिडकी से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे मे घूमती है। भाषी दाखिल होता है।]

माँ—कौन है?

भापी—शायद वे ही हैं। नीचे बिठा आया हूँ, पिताजी के पास, तुम चलो।

माँ—क्यो?

भाषी—उनके साथ एक स्त्री भी है।

[माँ जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाजा जरा-सा खोलकर देखता है और आवाज देता है—]

सुरेन्द्र—भापी!

भाषी—हाँ!

सुरेन्द्र—इधर आओ।

[भाषी कमरे में चला आता है। कुछ क्षण के लिए खामोशी। केवल बाहर मेह बरसने और हवा के थपेड़ो से किवाडो के खडखडाने का शोर, कमरे मे फानूस के हिलने की सरसराहट। डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी बाहर आते हैं।]

रौशन—डाक्टर साहब, अब बताइए।

डाक्टर—[अत्यधिक गम्भीरता से] बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन—बहुत नाजुक है?

डाक्टर—हाँ!

रौशन—कुछ नही हो सकता?

डाक्टर—परमात्मा के घर कुछ कमी नही, लेकिन आपने बहुत देर कर दी।-डिफ्थीरिया मे तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन—हमे मालूम ही नही हुआ डाक्टर साहब, कल शाम को इसे बुखार हो आया, गले मे भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाजार मे है—उन्होने गले मे आयरन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और मिक्श्चर बना दिया, बस दो बार दवा दी, इसकी हालत पहले से खराब हो गयी। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नही, तब रात को भापी को भेजा, फिर भी आप न मिले। डाक्टर जीवाराम आये थे, पर मैं उनकी दवा देने का हौसला न कर सका और फिर यह झडी लग गयी।

[जरा कांपता है।]

—ओले, आंधी और तूफान! ऐसी प्रलयकारी वर्षा तो कभी न देखी थी।

[बाहर हवा की सांय-सांय सुनायी देती है। डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है, रौशन उत्सुक नजरो से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत की ओर जोर-ज़ोर से हिलते फानूस को देख रहा है।]

डाक्टर—[सिर उठाता है] मैंने इजेक्शन दे दिया है। भापी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इजेक्शन का सामान और ट्यूब साथ लेता आया था और मेरा खयाल ठीक निकला। भापी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुस्खा लिख देता हूँ, यही बाजार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक मे दवा की दो-चार बूदे टपकाते रहना और एक घटे मे मुझे सूचित करना। यदि एक घटे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इजेक्शन और लगाकर जाऊंगा। इजेक्शन के सिवा डिपथीरिया का दूसरा इलाज नही।

रौशन—डाक्टर साहब [आवाज भर आती है।]

डाक्टर—घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद

रौशन—मै अपनी तरफ से कोई कसर न उठा रखूंगा। सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना, देखो जाना नही, यह घर उस बच्चे के लिए वीराना

है। यह लोग इसका जीवन नही चाहते, बडा रिस्ता पाने के मार्ग मे इसे रोडा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते है, सुरेन्द्र !

सुरेन्द्र—तुम क्या कह रहे हो रौशन ? उन्हे क्या यह प्रिय नही ? मूल से व्याज प्यारा होता है

डाक्टर—क्या कह रहे हो रौशनलाल ?

रौशन—आप नही जानते डाक्टर साहव ! ये सव लोग हृदयहीन है, आपको मालूम नही। इधर मैं अपनी पत्नी का दाहकर्म करके आया था, उधर ये लोग दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र—यह तो दुनिया का व्यवहार है भाई !

रौशन—दुनिया का व्यवहार इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर है ? मैं उससे नफरत करता हूँ ! क्या ये लोग नही समझते कि वह जो मर जाती है, वह भी किसी की लडकी होती है, किसी माता-पिता के लाड मे पली होती है, फिर उसके मरते ही सगाइयाँ लेकर दौडते है ! स्मृति-मात्र से मेरा खून उवलने लगता है !

डाक्टर—[चौंककर] देर हो रही है, मै दवा भेजता हूँ। [भाबी से] भापी, चलो।

[डाक्टर साहव और भाबी का प्रस्थान]

रौशन—सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड कर चला जाएगा ? मै तो इसका मुंह देखकर सन्तोप किये हुए था। उसी जैसी सूरत, उसी जैसी भोली-भाली आँखें, उसी जैसे मुस्कराते होठ, उसी जैसा सीधा सरल स्वभाव ! मैं इसे देखकर सरला का गम भूल चुका था, लेकिन अव, अव

[हाथो से चेहरा छिपा लेता है]

सुरेन्द्र—[उसे ढकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ] पागल न वनो, चलो, उसके घर मे क्या कमी है ? वह चाहे तो मरते हुओ को बचा दे, मृतको को जीवन प्रदान कर दे !

रौशन—[भर्राये गले से] मुझे उस पर कोई विश्वास नही रहा। उसका कोई भरोसा नही—क्रूर और निर्दयी ! उसका काम सताये हुओ को और सताना है, जले हुए को और जलाना है। अपने इस जीवन

मे हमने किसको सताया, किसको दु ख दिया जो हम पर ये बिजलियाँ गिरायी गयी, हमे इतना दु ख दिया गया !

सुरेन्द्र—दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भापी क्यो नही आया।

[उसे दरवाजे के अन्दर धकेलकर मुडता है। दायीं ओर के दरवाजे से माँ दाखिल होती है।]

माँ—किधर चले ?

सुरेन्द्र—जरा भापी को देखने जा रहा था।

माँ—क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र—उसकी हालत खराब हो रही है।

माँ—हमने तो बाबा बोलना ही छोड दिया। ये डाक्टर जो न करे थोडा है। बहू के मामले मे भी यही बात हुई थी। अच्छी-भली हकीम की दवा हो रही थी, आराम आ रहा था, जिगर का बुखार ही था, दो-दो वर्ष भी रहता है, पर यह डाक्टर को लाये बिना न माना। डाक्टरो को आजकल दिक के बिना कुछ सूझता ही नही। जरा बुखार पुराना हुआ, जरा खाँसी आयी कि दिक का फतवा दे देते है। 'मुझे दिक हो गया है !'—यह सुनकर मरीज की आधी जान तो पहले ही निकल जाती है। हमने तो भाई इसलिए कुछ कहना-सुनना छोड दिया है। आखिर मैंने भी तो पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरो के पीछे भागी-भागी नही फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र—डिपथीरिया !

माँ—वह क्या होता है ?

सुरेन्द्र—बडी खतरनाक बीमारी है माँजी ! अच्छा-भला आदमी दो-चार दिन के अन्दर खत्म हो जाता है।

माँ—[काँपकर] राम-राम, तुम लोगो ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला ! उसे जरा ज्वर हो गया, छाती जम गयी, बस। मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमे तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र—नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ? आपसे अधिक वह किसे प्यारा होगा ?

[चलने को उद्यत होता है ।]

माँ—सुनो !

[सुरेन्द्र रुक जाता है ।]

माँ—मैं तुमसे बात करने आयी थी, तुम उसके मित्र हो, समझा सकते हो ।

सुरेन्द्र—कहिए ।

माँ—आज वे फिर आये हैं ।

सुरेन्द्र—वे कौन ?

माँ—सियालकोट के एक व्यापारी हैं । जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लडकी का शगुन लेकर आये थे । पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया । हारकर बेचारे चले गये । रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं ।

सुरेन्द्र—माँजी

माँ—तुम जानते हो बच्चा, दुनिया-जहान का यह कायदा ही है । गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खडा होता है । रामप्रताप ही को देख लो, अभी दाहकर्म संस्कार के बाद नहाकर साफा भी न निचोडा था कि नकोदार वालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद विवाह भी हो गया । और अब तो सुनते है, एक बच्चा भी होने वाला है ।

सुरेन्द्र—माँजी, रामप्रताप और रौशन मे कुछ अन्तर है ।

माँ—यही कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है, और यह पढ-लिख कर माँ-बाप की अवज्ञा करना सीख गया है । बेटा, अभी तो चार नाते है, फिर देर हो गयी तो इधर कोई मुँह भी न करेगा । लोग सौ बातें बनाएँगे, सौ-सौ लाछन लगाएंगे, और फिर ऐसा कौन क्वारा है

सुरेन्द्र—तुम्हारा रौशन बिन ब्याहा नहीं रहेगा, इसका मैं यकीन दिलाता हूँ ।

मां—यह ठीक है, पर अब यह शरीफ आदमी मिले है। घर अच्छा है लडकी अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है, और सबसे बढकर यह है कि ये लोग बडे भले है। लडकी की बडी बहन से अभी मैंने बाते की है। ऐसी सलीके वाली है कि क्या कहूँ! बोलती है तो फूल झडते है। जिसकी बडी बहन ऐसी है, वह स्वय कैसे अच्छी न होगी?

सुरेन्द्र—मांजी, अरुण की तबीयत बहुत खराब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

मां—बेटा, ये भी तो इतनी दूर से आये है। इस आँधी और तूफान मे कैसे इन्हे निराश लौटा दूं?

सुरेन्द्र—तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती हैं?

मां—तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि जरा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हो, उन्हे बता दे। इतने मे लडके के पास बैठती हूं।

सुरेन्द्र—मुझसे यह नही हो सकता मांजी, बच्चे की हालत ठीक नही, बल्कि शोचनीय है। और आप जानती है वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान बच्चे मे केन्द्रित हो गया है। वह उसे अपनी आँखो मे बिठाये रखता है, स्वय उसका मुंह-हाथ धुलाता है, स्वय नहलाता है, स्वय कपडे पहनाता है और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नही, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ?

[बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रौशन दाखिल होता है। बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटी-सी।]

रौशन—सुरेन्द्र, तुम अभी यही खडे हो? परमात्मा के लिए जल्दी जाओ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भापी आया क्यो नही? अरुण तो जा रहा है, प्रतिक्षण जैसे डूब रहा है!

[सुरेन्द्र एक बार खिडकी से बाहर देखता है और फिर तेजी से निकल जाता है। मां रौशन के समीप जाती है।]

मां—क्या बात है, घबराये क्यो हो?

रौशन—मां, उसे डिपथीरिया हो गया है।

मां—सुरेन्द्र ने बताया है। [असन्तोष से सिर हिलाकर] तुम लोगो ने मिल-मिलाकर

रौशन—क्या कह रही हो ? तुम्हे अगर स्वय कुछ मालूम नही तो दूसरों को तो कुछ करने दो !

मां—चलो, मैं चलकर देखती हूं।

[बढती है।]

रौशन—[रास्ता रोकता है।] नही, तुम मत जाओ। उसे बेहद तकलीफ है, उसे साँस मुश्किल से आती है, उसका दम उखड रहा है, तुम घुट्टी-बुट्टी की बात करोगी। तुम यही रहो, मैं उसे बचाने की अन्तिम कोशिश करूँगा।

[जाना चाहता है।]

मां—सुनो !

[रौशन मुड़ता है। मां असमजस मे है।]

रौशन—कहो !

मां—[चुप।]

रौशन—जल्दी-जल्दी कहो, मुझे जाना है।

मां—वे फिर आये है।

रौशन—वे कौन ?

मां—वही सियालकोट वाले !

रौशन—[क्रोध से] उनसे कहो, जिस तरह आये हैं, वैसे ही चले जाएँ।

[जाना चाहता है।]

मां—रौशी !

रौशन—मैं नही जानता, मैं पागल हूं या आप ! क्या आप मेरी सूरत नही देखती ? क्या आपको इस पर कुछ लिखा दिखायी नही देता ? शादी, शादी, शादी ! क्या शादी ही दुनिया मे सब कुछ है ! घर मे बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है ! आखिर तुम लोगो को हो क्या गया है ? वह अभी मृत्यु-शैय्या पर पडी थी कि तुमने मेरी साली को लेकर शादी की बात चला दी, वह मर गयी,'मैं अभी रो भी न पाया

कि तुम शगुन लेने पर जोर देने लगी। क्या वह मेरी पत्नी न थी? क्या वह कोई फालतू चीज थी?

माँ—शोर मत मचाओ! हम तुम्हारे फायदे की बात करते है, राम प्रताप·· ·

रौशन—[चीखकर] तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो! अनपढ, अशिक्षित, गँवार! उसके दिल कहाँ है? महसूस करने का माद्दा कहाँ है? वह जानवर है!

माँ—तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था· ····

रौशन—वे   माँ जाओ, मैं क्या कहने लगा था!

[तेजी से मुडकर कमरे मे चला जाता है और दरवाजा बन्द कर लेता है। हाथ मे हुक्का लिये हुए, खँखारते-खँखारते रौशन के पिता का प्रवेश।]

पिता—क्या कहता है रौशन?

माँ—वह तो बात भी नही सुनता, जाने बच्चे की तबीयत बहुत खराब है।

पिता—[खँखारकर] एक दिन मे ही इतनी क्या खराब हो गयी? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाजी है।

[जोर से आवाज देता है।]

—रौशी, रौशी!

[खिडकियों पर वायु के थपेडों की आवाज]

[फिर आवाज देता है।]

—रौशी, रौशी!

[रौशन दरवाजा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है, आँखें रुँआसी-सी और निगाहों मे करुणा।]

रौशन—[अत्यन्त थके स्वर से] धीरे बोलें, आप क्यो शोर मचा रहे है?

पिता—इधर आओ!

रौशन—मेरे पास समय नही!

पिता—[चीखकर] समय नहीं ?

रौशन—धीरे बोलिए आप !

पिता—मैं कहता हूं, वे इतनी दूर से आये हैं, तुम्हे देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे जरा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन—मैं नही जा सकता।

पिता—नही जा सकता ?

रौशन—नही जा सकता !

पिता—तो मैं शगुन ले रहा हूं ! इस वर्षा, आंधी और तूफान मे मैं उन्हे अपने घर से निराश नही भेज सकता, घर आयी लक्ष्मी को नही लौटा सकता। लडकी अच्छी है, सुन्दर है, घर के काम-काज मे चतुर है, चार-पांच श्रेणी तक पढी है। रामायण, महाभारत बखूबी पढ लेती है।

[रोने की तरह रौशन हँसता है।]

रौशन—हाँ, आप लक्ष्मी को न लौटाइए।

[खट से दरवाजा बन्द कर लेता है।]

पिता—[रौशन की माँ से]—इस एक महीने मे हमने कितनो को इनकार किया है, पर इनको कैसे इनकार करें ? सियालकोट मे इनकी बडी भारी फर्म है। मैंने महीने भर मे अच्छी तरह पता लगा लिया है। हजारो का तो इनके यहाँ लेन-देन है। उन्हें कुछ बहू की बीमारी की ओर से आशका थी। पूछते थे—उसका देहान्त किस रोग मे हुआ ? सो भई मैंने तो यही कह दिया—दिक-विक कुछ नही था, जिगर की बीमारी थी। [गर्व से] लाख हो, रौशन जैसा कमाऊ लडका मिल भी कैसे सकता है ? बेकारो की फौज दरकार हो तो चाहे जितनी मर्जी इकट्ठी कर लो। उस दिन लाला सुन्दरलाल अपनी लडकी के लिए कह रहे थे—कालेज मे पढती है। पर मैंने तो इनकार कर दिया।

माँ—अच्छा किया। मुझे तो आयु भर उसकी गुलामी करनी पडती। बच्चे को पूछते होगे ?

पिता—हाँ, मैंने तो कह दिया—बच्चा है, पर माँ की मृत्यु के बाद उसकी हालत ठीक नही रहती।

माँ—तो आप हाँ कर दें।

पिता—हाँ, मैं तो शगुन ले लूंगा।

[चले जाते है। हुक्के की आवाज दूर होते-होते गुम हो जाती है। माँ खुशी-खुशी कमरे मे घूमती है, कमरे मे भाषी आता है और तेजी से निकल जाता है।]

माँ—भाषी!

भाषी—मैं डाक्टर के यहाँ जा रहा हूँ!

[तेजी से चला जाता है। बीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।]

सुरेन्द्र—माँजी!

माँ—क्या बात है?

सुरेन्द्र—दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो!

माँ—क्या?

[आंखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है। हवा की साँय-साँय।]

सुरेन्द्र—अरुण इस ससार से जा रहा है।

[फानूस टूटकर धरती पर गिर पड़ता है। माँ भागकर दरवाजे पर जाती है।]

माँ—रौशी, रौशी!

[दरवाजा अन्दर से बन्द है।]

माँ—रौशी रौशी!

रौशन—[कमरे के अन्दर से भर्राए स्वर मे] क्या बात है?

माँ—दरवाजा!

रौशन—तुम पहले लक्ष्मी का स्वागत कर लो!

माँ—रौशी!

[बायीं ओर के दरवाजे के बाहर से खँखारने की और हुक्के की आवाज।]

पिता—[सीढियो से ही] रौशन की माँ, बधाई हो!

[रौशन के पिता का प्रवेश। माँ उनकी ओर मुड़ती है।]

पिता—बधाई हो, मैंने शगुन ले लिया।

[कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिए रौशन का प्रवेश।]

रौशन—हाँ, नाचो, गाओ, बाजे बजाओ !

[पिताके हाथ से हुक्का गिर जाता है और मुह खुला रह जाता है।]

पिता—मेरा बच्चा ! [वहीं बैठ जाता है।]

माँ—मेरा लाल ! [रोने लगती है।]

सुरेन्द्र—माँजी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो।

[पटाक्षेप]

मानव-मन

सेठ गोविन्ददास

पात्र

पद्मा	:	२१-२२ वर्ष की एक पतिपरायणा युवती
भारती	:	पद्मा की पड़ोसिन, एक विधवा स्त्री
कृष्णवल्लभ	:	पद्मा के पति
मुनीम		
समाधानी		

[बरामदा आधुनिक ढग का है और उसी तरह सजा भी है। पीछे की दीवाल दीखती है और दो तरफ खभों पर डाटें। दीवाल गुलाबी रग से रँगी है। उस पर श्रीनाथजी, यमुनाजी और श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओ के चित्र टँगे है। डाटो मे से बगीचे का कुछ हिस्सा दिखायी देता है जो उगते हुए सूय के प्रकाश से रँग रहा है। बरामदे के सीलिंग से बिजली की बत्तियाँ झूल रही हैं और जमीन पर, जो संगमरमर से पटी है, अनेक सोफे, कुर्सियाँ और टेबिलें सजी हैं। एक कुर्सी पर पद्मा बैठी हुई है और अपने सामने की टेबिल पर रखी हुई एक खुली चिट्ठी ध्यान से पढ रही है। पद्मा करीब २१-२२ साल की साधारण कद और सुडौल शरीर की सुन्दरी स्त्री है। रग गोरा है। रेशमी साडी, ब्लाउज और रत्न-जटित आभूषण पहने है। मस्तक पर लाल टिकली है और उसी के नीचे दोनो भवो के बीच मे श्रीनाथजी का पीला चरणामृत लगा है। भारती का प्रवेश। उसकी अवस्था करीब ४० वर्ष की है। वह लम्बे कद की दुबल-पतली साधारण तथा सुन्दर स्त्री है। रग गेहुँआ है। सूती साडी और शलूका पहने है, वेश-भूषा से विधवा जान पडती है।]

भारती—[पद्मा के निकट आते हुए] बडे ध्यान से क्या पढ रही हो बहन?

पद्मा—[चौंककर] ओ भारती बहन! [खडे होकर] आओ बैठो बहन!

[भारती और पद्मा दोनो कुर्सियो पर बैठ जाती हैं।]

भारती—क्या पढ रही थी?

पद्मा—उनकी चिट्ठी आयी है।

भारती—तभी इतनी ध्यानावस्थित थी कि मेरी बोली सुनकर भी चौंक पडी।

पद्मा—उनका पत्र मुझे ध्यानावस्थित करने को काफी है, यह मैं जानती हूँ, पर ध्यानमग्न होने का एक और भी सबब था।

भारती—क्या ?

पद्मा—उस पत्र के समाचार।

भारती—क्यो, उनके मित्र की तबियत कैसी है ?

पद्मा—वैसी ही है, क्षय ऐसी बीमारी नही, जो जल्दी अच्छी हो जाय, या बिगड जाय।

भारती—फिर वहाँ से और क्या समाचार आ सकते है ?

पद्मा—सुन लो, पत्र ही सुना देती हूँ। [पत्र उठाकर पढते हुए] 'तुम्हे यहाँ का हाल पढकर आश्चर्य हो सकता है, पर इस जमाने मे इस तरह की चीजें कोई ताज्जुब की बात नही है' '

भारती—किस तरह की चीजें ?

पद्मा—वही तो पढती हूँ, सुनो [पढते हुए] 'इस दफा भाभीजी का विचित्र किस्सा है। बृजमोहन की तबियत वैसी ही होते हुए भी, उनके पलग पर पडे रहने पर भी, इधर-उधर हिलने-हुलने की ताकत न होने पर भी, भाभीजी का पुराना प्रोग्राम फिर लौट आया है। नित्य प्रात-काल एक घटा टब और शावर बाथ मे लगता है। फिर बाल सँवारने, पाउडर लगाने, लिपस्टिक और नेल पेंट को काम मे लेने मे काफी वक्त लग जाता है। रोज नयी साडी और ब्लाउज पहना जाता है। हर दिन शाम का समय क्लब मे जाता है और अगर किसी दिन गार्डन पार्टी या डिनर या डास का न्योता आ गया तब तो रात को भी लौटने का कोई निश्चित वक्त नही रहता। बृजमोहन को सम्हालते है डाक्टर और जहाँ तक भाभी का सम्बन्ध है वहाँ तक एक दफा बृजमोहन की तबियत पूछ लेने से उनके कर्तव्य की समाप्ति हो जाती है।' [पत्र टेबिल पर रखकर भारती की तरफ देखते हुए] कहो बहन, पत्र के समाचार ध्यानावस्थित कर देने के लायक हैं या नही ?

भारती—[गम्भीरता से] तुम्हें इन समाचारो से अचम्भा हुआ है ?

पद्मा—अचम्भा ! वडे से वडा अचम्भा जो दुनिया मे हो सकता है।

भारती—वृजमोहनजी कितने दिन से वीमार हैं ?

पद्मा—कोई दो साल हो गये होंगे।

भारती—और उनकी पत्नी का और उनका बीमारी के पहले कैसा सम्बन्ध था ?

पद्मा—अच्छे से अच्छा। दोनो कालेज के प्रेमी थे और शादी प्रेम के परिणामस्वरूप हुई थी। तभी तो भाभीजी का व्यवहार और भी आश्चर्य पैदा करता है!

[भारती चुपचाप कुछ सोचने लगती है। पद्मा उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

भारती—कृष्णवल्लभजी पहले-पहल वृजमोहनजी को देखने गये है ?

पद्मा—नही, एक दफा उनकी वीमारी के शुरू मे गये थे।

भारती—उस समय भाभीजी का क्या हाल था ?

पद्मा—इसके ठीक विपरीत। उस वक्त वृजमोहनजी की बीमारी उनके दिवस की चिंता और रात्रि का स्वप्न थी। उनकी दिनचर्य्या वृजमोहनजी के नजदीक बैठे-बैठे चौवीस घटे गुजारना था। डाक्टर और नर्सों के रहते हुए वे ही उन्हे दवा देती थी, वे ही उनका टेम्प्रेचर लेती थी। वे ही अपने हाथो उनका सारा काम करती थी। तभी···तभी तो अव भाभी के व्यवहार से ताज्जुव होता है। [कुछ ठहरकर] तुम्हे इससे अचम्भा नही होता बहन ?

भारती—[गम्भीरता से] नही।

पद्मा—नही ?

भारती—नही बहन, वरदाश्त करने की भी हद होती है।

पद्मा—वरदाश्त करने की हद होती है ?

भारती—जरूर। सहन-शक्ति सीमारहित नही है।

पद्मा—ऐसे मामलो मे भी ?

भारती—हरेक मामले मे।

पद्मा—क्या कहती हो वहन, क्या कहती हो ? पति बीमार हो, खाट

पर पड़ा हो, उठने-बैठने, हिलने-डुलने की ताकत न हो और पत्नी इस तरह की वेश-भूपा करे, इस तरह के गुलछर्रे उडाये ! कहाँ गया भाभीजी का उनके प्रति प्रेम ? कहाँ गयी भाभीजी की उनकी वह सेवा जो बीमारी के शुरू मे थी ?

भारती—तुम्हारी भाभीजी दो वर्षो तक उस तरह अपनी जिन्दगी नही बिता सकती थी, जिस तरह उन्होने बृजमोहनजी की बीमारी के शुरू मे बिताना आरम्भ किया था।

पद्मा—तब तो शायद वे यह चाहती होगी कि बृजमोहनजी का बृजमोहनजी का जीवन ही जीवन ही समाप्त हो जाय ?

भारती—सभव है।

पद्मा—[उत्तेजना से] वह स्त्री नही, सुना बहन, सच्ची स्त्री नही। पति की बीमारी मे, बीमार पति की सेवा मे, दो वर्ष नही अगर सारा जीवन भी बीत जाय तो स्त्री को रो-धोकर नहीं, शांति से उसे बिता देना चाहिए।

भारती—यह कहना जितना सरल है, करना उतना ही कठिन है।

पद्मा—नयी रोशनी की औरतो के लिए होगा जिन्हे न धर्म पर विश्वास है और न भगवान पर भरोसा, जिनके लिए विवाह धार्मिक सस्कार नही, एक इकरारनामा है, जिनकी एक जीवन मे एक नही अनेक शादियाँ हो सकती है, एक नही अनेक पति मिल सकते है।

भारती—मैं समझती हूँ सभी के लिए।

पद्मा—[ताने से] क्या अपने अनुभव से कहती हो ?

भारती—[गम्भीरता से] सोच सकती हो। [कुछ ठहरकर] बहन, मैं नयी रोशनी की नही हू। विवाह को इकरारनामा न मानकर सच्चा धार्मिक सस्कार मानती हूं। पति को अपना सर्वस्व मानती थी। जब उन्हे लकवा हुआ तब मैं खाना, पीना, नीद, आराम सब कुछ छोडकर उनकी सेवा मे दत्तचित्त हुई। उनकी बीमारी ही मेरी दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न हो गयी। वह मानसिक दशा बहुत दिन तक रही भी। वे तीन वर्ष तक बीमार रहे, पर आखिर मे ऊब उठी थी।

पद्मा—और तुम आखिर मे, आखिर मे यह भी चाहने लगी थी कि उनका जीवन 'उनका जीवन समाप्त हो जाए ?

भारती—[कुछ सोचते हुए] कह नही सकती । जब उनको तकलीफ बहुत बढी तब कई बार यह बात मन मे उठती थी कि उन्हे इतनी तकलीफ न सहनी पडे तो ही अच्छा है । सम्भव है यह बात यथार्थ मे उनके लिए न उठकर अपने छुटकारे के लिए उठती हो । बहन, तुम्हारी भाभीजी भी बृजमोहन की बीमारी के शुरू मे यह कभी न चाहती होगी कि उनका जीवन समाप्त हो जाए, उन्होंने उनके अच्छे करने मे कोई बात उठा न रखी होगी, परन्तु जब उन्हे यह दीख पडने लगा होगा कि उनका अच्छा होना अब असम्भव है तब तब

पद्मा—[क्रोध से] बहन, वह कुलटा होगी, वह व्यभिचारिणी होगी । किसी भी हालत मे, किसी भी परिस्थिति मे, कोई हिन्दू स्त्री, कोई सच्ची हिन्दू पत्नी, अपने पति, अपने आराध्यदेव के सम्बन्ध मे ऐसी बात जागृत अवस्था मे तो क्या स्वप्न मे भी नही सोच सकती, चाहे उसका सारा जीवन नष्ट हो जाए, सारी जिन्दगी बर्बाद हो जाए ।

भारती—बहन, तुम जो कहती हो वह आदर्श है । अपने सारे सुखो को तिलाजलि देकर कोई स्त्री अगर अपने को पति मे इस प्रकार विलीन कर सके, कोई प्रेमिका यदि अपने निजत्व को, अपने प्रेमी को इस प्रकार समर्पण मे दे सके तो वह मानवी नही देवी है, वह मनुष्य नही देवता है, लेकिन बहन, 'यह मानव-मन ' मानव-मन मानव-मन ।'

[दोनों गम्भीरता से एक दूसरी की तरफ देखती हैं ।]

[यवनिका-पतन]

मुख्य दृश्य

स्थान—कृष्णवल्लभ के मकान मे उसके सोने का कमरा

समय—दोपहर

[कमरे के तीनो तरफ की दीवालें दीखती हैं जो आसमानी रग से रँगी हुई हैं । पीछे की दीवाल मे कई दरवाजे और खिडकियाँ हैं, जिनमे उसके बाहर की बालकनी का कुछ भाग, बगीचे के दरख्तो का ऊपरी

हिस्सा तथा आकाश दिखायी देता है, जिससे जान पड़ता है कि कमरा दुमजिले पर है। दाहिनी तरफ की दीवाल मे दो दरवाजे और एक खिड़की है। इनमे से एक दरवाजा खुला हुआ है। इससे स्नानागार का कुछ हिस्सा दिखायी देता है। बायीं ओर की दीवाल मे भी दो दरवाजे और एक खिड़की है। इनमे से भी एक ही दरवाजा खुला है, जिसमे नीचे के जीने का कुछ भाग दीखता है। दीवाल पर श्रीनाथजी, यमुनाजी और श्रीकृष्ण की लीलाओ के कई चित्र लगे है। कमरे की छत से बिजली की बत्तियाँ और सीलिंग फैन झूल रहा है। जमीन पर कालीन बिछा है, जिसके बीचोबीच चाँदी के पायो का एक पलग बिछा है। पलग के पास ही एक टेबिल रखी है जिस पर दवा की शीशियाँ, एक टाइमपीस घड़ी और नोटबुक इत्यादि रखी हैं। पलग पर कृष्णवल्लभ रुग्ण अवस्था में लेटा है। उसकी उम्र करीब ३० वर्ष की है। वह साधारण ऊँचाई और गोरे रग का व्यक्ति है, पर बीमारी के कारण अत्यन्त कृश हो गया है। मुख पर पीलापन और आँखों के चारों तरफ कालिमा आ गयी है। सिर के बाल अंग्रेजी ढग से कटे हैं और दाढी-मूंछ मुंडी हुई हैं। वह गले तक एक ऊनी शाल ओढे हुए है। उसके नजदीक की एक कुर्सी पर पद्मा बैठी हुई है। पद्मा की वेशभूषा एकदम सादी हो गयी है। मस्तक की टिकली और उसके नीचे का चरणामृत उसी तरह लगा है जैसा उपक्रम मे था। उसके मुख पर शोक और चिन्ता का साम्राज्य छाया हुआ है।]

कृष्णवल्लभ—[खाँसकर] दो वर्ष हो गये न प्रिये! दो वर्ष पहले की इसी महीने की इसी तारीख को पहले-पहल बुखार आया था।

पद्मा—हाँ प्राणनाथ, दो वर्ष हो गये।

कृष्णवल्लभ—बृजमोहन दो वर्ष से कुछ ही ज्यादा तो बीमार रहा?

पद्मा—आप न जाने क्या-क्या सोचा करते है!

कृष्णवल्लभ—[फिर खाँसते हुए] क्यो प्रिये, यह कैसे न सोचूं? जो क्षय उसे था वही मुझे है, और वहाँ से लौटने के थोड़े दिन बाद ही हो भी गया।

पद्मा—इससे क्या होता है, क्या इस बीमारी के रोगी अच्छे नही होते?

कृष्णवल्लभ—बृजमोहन तो नही हुआ और मैं भी नही हो रहा हूँ।

पद्मा—आप हो जाएँगे।

कृष्णवल्लभ—अभी तुम्हे आशा है ? प्रिये, आशा की जगह न होते हुए भी कई दफा मनुष्य आशा को मन मे ठूँसने का बलात्कार करता है। इस तरह की आशा अपने आपको धोखा देने की कोशिश करना है। यह झूठी आशा है, अस्वाभाविक आशा है।

पद्मा—[जोर से] क्या कहते हैं नाथ, क्या कहते है ? मुझे आशा नही विश्वास, पक्का विश्वास है कि आप अच्छे हो जाएँगे।

कृष्णवल्लभ—[पद्मा की तरफ करवट लेकर खाँसते हुए] और तो अच्छे होने के कोई आसार नही है, हाँ तुम्हारी तपस्या मुझे अच्छा कर दे तो दूसरी बात है।

[पद्मा कोई उत्तर नहीं देती। उसकी आँखो मे आँसू भर आते हैं।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, तुम मानवी नही देवी हो। इन दो सालो मे तुमने मेरे लिए क्या नही किया ? न पेट भर खाया, न नीद भर सोयी, पूजा-पाठ, जप-दर्शन तक छोड दिये। चौबीसो घण्टे मेरे पलग के पास। कहाँ-कहाँ ले जाकर मेरी आबहवा बदलवायी। दो वर्ष के इस जीवन मे किसी प्रकार का भी, कोई भी सुख किसे कहते हैं, वह तुम नही जानती।

पद्मा—[आँखों में आँसू भरकर] आपके अच्छे होते ही मेरे सारे सुख दूने होकर लौट आएँगे।

कृष्णवल्लभ—[एकटक पद्मा की ओर देखते हुए] और प्रिये, अगर मैं अच्छा न हुआ तो ?

पद्मा—यह कल्पना करने की भी बात नही है।

[कृष्णवल्लभ और पद्मा कुछ देर चुप रहते हैं। निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—[अपने दुबले हाथ ऊनी चादर से बाहर निकालकर पद्मा का हाथ अपने हाथ में लेते हुए] प्राणप्यारी, यह जानते हुए भी कि दुनिया मे सबसे निश्चित बात मरना है, कोई मरना नही चाहता। मैं भी मृत्यु का आह्वान नही कर रहा हूँ। मैं जीना चाहता हूँ। तुम्हारे साथ वे सब सुख भोगने का इच्छुक हूँ जो दो वर्ष पहले प्राप्त थे। [खाँसने के कारण चुप हो जाता है। कुछ ठहरकर] सावन की उमडती हुई घटाएँ और

उनमे चमकती हुई बिजली, उन घटाओ का गर्जन और मन्द-मन्द बरसती हुई फुहार, उसमे पपीहे की पीहू और मोर का केका तथा उस वायु-मडल मे तुम्हारे साथ झूलते हुए झूले की मुझे अब जितनी याद आती है उतनी स्वस्थ दशा मे कभी नही आती थी। [खाँसी के कारण चुप हो जाता है। कुछ ठहरकर] बसत मे खिले हुए फूलो की रग-बिरगी क्यारियाँ उनके दर्शन और उनकी सुगध, मथर गति से चलना हुआ मलयानिल और कोकिल की कुहू और उस वातावरण मे हम दोनो की अठखेलियाँ, तथा गुलाल और अबीर की उडान का अब जितना स्मरण आता है उतना जब मैं अच्छा था तब मुझे न आता था। [खाँसते-खाँसते फिर रुक जाता है। कुछ ठहरकर] प्राणेश्वरी, मैं वे सारे सुख, सारे आनन्द फिर भोगना चाहता हूँ, लेकिन लेकिन प्रिये [चुप हो जाता है।]

पद्मा—[आँखें पोछते हुए] लेकिन कुछ नहीं हृदयेश्वर, आपके अच्छे होते ही हम वे सुख फिर भोगेंगे।

[कृष्णवल्लभ कोई उत्तर नहीं देता। थकावट के कारण पद्मा का हाथ छोडकर आँखें बन्द कर लेता है।]

पद्मा—[खडे होकर] क्यो, थकावट मालूम होती है?

कृष्णवल्लभ—यो ही थोडी-सी।

पद्मा—मैंने कई दफा कहा आप ज्यादा न बोला करें।

कृष्णवल्लभ—तुमसे बोलकर, पुराने सुखो की याद कर जो थोडा-सा आनन्द मिल जाता है, उसे भी खो दूँ?

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। कृष्णवल्लभ भी कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, एक बात जानती हो?

पद्मा—क्या नाथ?

कृष्णवल्लभ—मेरे मन मे जब-जब यह उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा तब तब मेरे सामने एक चित्र खिंच जाता है।

पद्मा—आपके मन मे ऐसी बात ही नही उठनी चाहिए।

कृष्णवल्लभ—उसे मैं न रोक सकता हूँ और न तुम। [खाँसता है, कुछ रुककर] मैं तुमसे एक प्रार्थना करता हूँ।

पद्मा—प्राणेश्वर, आप हमेशा आज्ञा दे सकते है।

कृष्णवल्लभ—पर तुम मानती कहां हो ?

पद्मा—मै आपकी आज्ञा नही मानती ?

कृष्णवल्लभ—और बातो मे मानती हो, पर एक मामले मे नही।

पद्मा—किसमे ?

कृष्णवल्लभ—मेरे हृदय मे जो कुछ उठता है उसे नही सुनती। हमेशा मेरी बात पूरी होने के पहले मुझे रोक देती हो। नतीजा यह निकलता है कि कह सुनकर मन को निकाल लेने से जो शांति मिलती है उससे भी मैं वंचित रह जाता हूँ।

पद्मा—तो आपकी वाहियात बाते भी सुना करूँ, उन बातो के बीच में भी आपको न रोकूं ?

कृष्णवल्लभ—प्रिये, तुम अनुमान नही करती बीमार की कल्पनाओ का, तुम अनुभव नहीं कर सकती उस शांति का जो उन कल्पनाओ को अपने सबसे बड़े प्रेमी, अपने सर्वस्व के सामने व्यक्त करने मे मिलती है।

पद्मा—[लम्बी सांस लेकर] अच्छी बात है हृदय पर पत्थर रख कर जो कुछ आप कहेंगे अब सब कुछ सुन लिया करूँगी।

कृष्णवल्लभ—[कुछ ठहरकर] मैं तुमसे कह रहा था कि जब-जब मेरे मन में यह उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा तब तब मेरे सामने एक चित्र खिंच जाता है। जानती हो किसका ?

पद्मा—बृजमोहनजी का होगा।

कृष्णवल्लभ—नहीं।

पद्मा—तब ?

कृष्णवल्लभ—भाभी का।

पद्मा—[उत्तेजित होकर] उस कुलटा का, उस पापिनी का, जिसने उनकी बीमारी मे भी अपने गुलछर्रे नही छोड़े, जिसने उनके मरते ही दूसरी शादी करने मे देर न की।

कृष्णवल्लभ—प्रिये, भाभी न कुलटा थी और न पापिनी।

पद्मा—उससे बड़ी कुलटा और उससे बड़ी पापिनी न मैने देखी और न सुनी है।

कृष्णवल्लभ—पहले मैं भी ऐसा समझता था पर अब नही समझता।

पद्मा—तो अब आप उसे बडी साध्वी, बडी धर्मात्मा समझते हैं ?

कृष्णवल्लभ—कुलटा और पापिनी तो नही समझता [खाँसता है, कुछ रुककर] एक बात और कहूँ ?

पद्मा—सब कुछ सुनने का तो मैंने वचन दे ही दिया है।

कृष्णवल्लभ—अगर तुम वैसी होती तो मुझे आज अपनी बीमारी का इतना दुःख न होता।

पद्मा—[आँखो में आँसू भरकर] नाथ, आप यह क्या कह रहे हैं ? क्या कह रहे है ?

[कृष्णवल्लभ कोई उत्तर न देकर खाँसने लगता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, कभी-कभी मुझे अपने से ज्यादा तुम्हारी चिन्ता हो जाती है। जब-जब मेरे मन मे उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा, तब-तब मेरे जीने की इच्छा तो और प्रबल हो ही जाती है, तुम्हारे साथ भोगे हुए सुख भी याद आने लगते है, और उन्हे फिर से भोगने के लिए भी मैं अधीर हो उठता हूँ। तुम्हे छोडकर जाना पडेगा शायद इसीलिए जाने का मुझे इतना दुःख होता है। पर इन सब बातो के सिवा जिस चीज से मैं सबसे ज्यादा तिलमिला उठता हूँ, वह है तुम्हारी इस वक्त की अवस्था, मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा, इसकी कल्पना। काश, तुम भी भाभी के समान हो जाती तो मैं इस फिक्र से तो '

[कृष्णवल्लभ को खाँसी का जोर से एटैक होता है। खाँसते-खाँसते वह बैठ जाता है। पद्मा घबराकर उसकी पीठ सहलाती है। कुछ देर मे उसकी खाँसी रुकती है और वह एकदम थककर लेट जाता है तथा आँखें बद कर लेता है। जीने से चढकर स्वच्छ वस्त्रो मे एक मुनीम का प्रवेश।]

मुनीम—श्रीनाथद्वारे के समाधानी वहाँ से छप्पन भोग का निमन्त्रण और श्रीनाथजी का बीडा लेकर पधारे हैं। यही सेवा मे आना चाहते हैं।

कृष्णवल्लभ—[धीरे-धीरे] मेरे बडे भाग्य ! ऐसे वक्त श्रीनाथजी का बीडा ! उन्हे फौरन ले आइए मुनीमजी !

मुनीम—जैसी आज्ञा। [प्रस्थान]

कृष्णवल्लभ—[धीरे-धीरे] श्रीनाथद्वारे मे छप्पन भोग है और मेरी बदकिस्मती तो देखो, मुझे ही दर्शन न होगे। इतना ही नही, तुम भी न जा सकोगी।

[मुनीम के साथ समाधानी का प्रवेश। समाधानी करीब ५० वर्ष का ठिगना और मोटा आदमी है। शरीर पर लम्बी बगलबंडी पहने है। सिर पर उदयपुरी पाग बाँधे है और गले मे दुपट्टा डाले है। उसके हाथों मे एक लिफाफा और वल्लभकुली बीडा है। कृष्णवल्लभ उठने का प्रयत्न करता है। पद्मा उसे सहारा देकर उठाती और पीछे तकिया लगाकर बैठाती है। वह समाधानी के हाथ जोडता है और खडे होकर पद्मा भी।]

समाधानी—[नजदीक आते हुए] आयुष्मान श्रीमान्! सौभाग्य अचल होय श्रीमती!

[नजदीक पहुँचकर समाधानी अपने हाथ का लिफाफा और बीडा कृष्णवल्लभ के हाथों मे देता है। कृष्णवल्लभ उन्हें सिर और आँखो से लगा कर हृदय से लगाता है और टेबिल पर रख देता है। सब लोग कुर्सियो पर बैठते हैं।]

समाधानी—श्रीमान की अवस्था के समाचार सूं महाराज श्री कूं अत्यन्त खेद भयो। मोकूं या हेतु पठायो है कि श्रीमान कूं आशीर्वाद सहित छप्पन भोग को निमन्त्रण देऊँ और निवेदन करूँ कि श्रीमानजी आगे सुधि करते हैं!

कृष्णवल्लभ—महाराज श्री के अनुग्रह के लिए कृतज्ञता के मेरे पास शब्द नही है, समाधानीजी। मुझसे तो उस घर के अनगिनती वैष्णव हैं और इतने पर भी महाराज श्री को मेरे पर यह कृपा! [खाँसता है और कुछ रुककर] समाधानीजी महाराज श्रीजी की इस अनुकम्पा से मुझे रोमाच हो रहा है!

समाधानी—आपके मे अगणित वैष्णव! क्या कहे हैं श्रीमान? आपसे तो आप ही हैं!

कृष्णवल्लभ—[आँखो मे आँसू भरकर] कैसी मेरी बदकिस्मती कि जिस छप्पन भोग के दर्शन की अभिलाषा वर्षों से थी उसके मौके पर मेरा यह हाल है।

समाधानी—श्रीनाथजी आपको शीघ्र स्वस्थ करिहैं। श्रीमान न पधार सकें तो श्रीमतीजी।

कृष्णवल्लभ—[पद्मा की तरफ देखकर] ये'' हाँ, ये जरूर जा सकती हैं। और अगर ये जाएँ तो मुझे तो उससे जितनी खुशी होगी उतनी किसी दूसरी चीज से हो नही सकती। [कुछ खाँसकर] छप्पन भोग का क्या कार्यक्रम है, समाधानीजी ?

समाधानी—पहले वर्ष भर के उत्सव के मनोरथ होयँगे और अन्त मे प्रभु छप्पन भोग आरोगेंगे। [पद्मा से] श्रीमतीजी, आप अवश्य पधारें। महाराज श्री ने आज्ञा करी है कि श्रीमान न पधार सके तो आपके पधारवे सूं महाराज श्री कूं परम हर्प होयगो। आप पधारकर श्रीमान के स्वस्थ होयवे कूं प्रभु सन्निधान मे प्रार्थना करे। श्रीनाथजी श्रीमान कूं शीघ्र ही स्वास्थ्य प्रदान करहिंगे।

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। कृष्णवल्लभ पद्मा की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—मुनीमजी, समाधानीजी थके-माँदे आये है। आप को अतिथि-आलय मे अच्छी तरह ठहराइए। महाराज की आज्ञा पर हम लोग विचार करेंगे। [खाँसता है]

मुनीम—जैसी आज्ञा।

[मुनीम और समाधानी उठते हैं।]

कृष्णवल्लभ—आज शाम को फिर दर्शन देने की कृपा कीजिएगा।

समाधानी—जैसे आज्ञा श्रीमान।

[कृष्णवल्लभ और पद्मा हाथ जोडते है। समाधानी हाथ उठाकर आशीर्वाद देता है। मुनीम और समाधानी का प्रस्थान। कृष्णवल्लभ खाँसता है और लेटने लगता है। पद्मा उठकर टिकाने के तकिये हटा, उसे सहारा देकर लिटाती और फिर कुर्सी पर बैठती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये।

पद्मा—प्राणनाथ।

कृष्णवल्लभ—तुम्हारी जाने की इच्छा है ?

पद्मा—आपको इस हालत मे छोड़कर ?

कृष्णवल्लभ—बहुत दिन का काम तो है नहीं।

पद्मा—लेकिन मैं तो एक मिनट के लिए भी आपको नही छोड़ सकती।

कृष्णवल्लभ—प्राणप्यारी, अर्धकुंभ पर जब हम हरिद्वार न जा सके थे तब हमने कुंभ पर जाने का निश्चय किया था। कुंभ के मौके पर ही मैं बीमार पड़ा। [खाँसता है, कुछ ठहरकर] तुम्हे बहुत समझाया, तुम नही गयीं। अब श्रीनाथजी के छप्पन भोग का उत्सव है। हर दफा ऐसे मौके नही आते।

पद्मा—लेकिन प्राणनाथ, मैं आपको कैसे छोड़ सकती हूँ ?

कृष्णवल्लभ—डाक्टर दोनो वक्त आते हैं, तुम्हारी गैरहाजिरी मे नर्स का इन्तजाम हो जाएगा। श्रीनाथजी का छप्पन भोग है, प्राणप्यारी, महाराज श्री ने कृपा कर समाधानी के हाथ निमन्त्रण भेजा है, श्रीनाथ जी ने सुधि ली है, महाराज श्री ने आज्ञा दी है।

[पद्मा कोई उत्तर नहीं देती। देर तक निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—पन्द्रह-बीस दिन से ज्यादा नही लगेंगे प्रिये!

[पद्मा फिर भी कोई उत्तर नहीं देती। कृष्णवल्लभ पद्मा की तरफ देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, मेरी एक प्रार्थना मानोगी ?

पद्मा—फिर वही बात नाथ प्रार्थना! आप आज्ञा दें।

कृष्णवल्लभ—[खाँसकर] तो मैं आज्ञा देता हूँ प्राणप्यारी, तुम जाओ, श्रीनाथद्वारे जरूर जाओ, जरूर!

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। आँखो मे आँसू भर आते हैं।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, श्रीनाथजी के सन्निधान मे मेरे स्वस्थ होने के लिए, अपने सौभाग्य के लिए, प्रार्थना · · प्रार्थना करना, प्राणप्यारी! [आँसू भर आते हैं।]

[पद्मा रो पड़ती है। कृष्णवल्लभ को फिर जोर से खाँसी का दौरा होता है।]

[यवनिका पतन]

उपसंहार

स्थान—कृष्णवल्लभ के मकान का बरामदा

समय—सन्ध्या

[दृश्य वैसा ही है जैसा उपक्रम मे था। उदय होते हुए सूर्य के स्थान पर डूबते हुए सूर्य की किरणें बाहर के उद्यान को रँग रही हैं। एक तरफ पद्मा के दो सूटकेस, होल्डाल, टिफिन कैरियर, सुराही इत्यादि सामान बँधा हुआ रखा है। पद्मा अपने सामान को देख रही है। उसने फिर से रेशमी साडी, ब्लाउज, रत्न-जटित आभूषण धारण कर लिये हैं। उसका मुख प्रसन्न तो नही कहा जा सकता लेकिन उस पर उस तरह का शोक और चिन्ता का साम्राज्य नहीं, जैसा मुख्य दृश्य मे था। भविष्य के सुख की एक प्रकार की उत्कण्ठा उसके मुख पर दीख रही है। भारती का प्रवेश। वह वैसी ही दीखती है जैसी उपक्रम मे थी।]

पद्मा—[भारती के आने की आहट पाकर उस तरफ देख तथा भारती को आते हुए देखकर उसी तरफ बढते हुए] ओ, भारती बहन! आओ बैठो बहन!

[भारती और पद्मा दोनों कुर्सियो पर बैठ जाती हैं।]

भारती—श्रीनाथद्वारे जा रही हो बहन?

पद्मा—[दाहिनी तरफ के बगीचे की ओर देखते हुए] हाँ, वहाँ छप्पन भोग का उत्सव है, वे मुझे भेज रहे हैं।

भारती—वे तुम्हे भेजकर बिलकुल ठीक काम कर रहे हैं और तुम जाकर भी सर्वथा उचित बात कर रही हो।

पद्मा—[भारती की तरफ देखकर] ऐसा?

भारती—बिलकुल। छप्पन भोग के अवसर पर तो वल्लभकुल सम्प्रदाय मे वर्ष भर के सभी उत्सवो के मनोरथ होते हैं न?

पद्मा—हाँ।

भारती—तुम्हे और कृष्णवल्लभजी को वर्षा और वसत बहुत प्रिय थे। श्रीनाथद्वारे मे सावन का हिण्डोलोत्सव, वसत का फूलडोल और

भी अनेक उत्सवो के दर्शन, नित्यप्रति होने वाले रास और गायन आदि से दृश्येन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय को तृप्ति मिलेगी। महाप्रसाद से जिह्वा को शाति प्राप्त होगी। अधिकाश इन्द्रियाँ सतुष्ट हो जाएँगी। हर तरह से मन वहलेगा। इहलोक परलोक दोनो सुधरेंगे।

पद्मा—[भर्राये हुए स्वर मे] बहन ''बहन''

भारती—बहन, बरदाश्त करने की भी हद होती है। सहन-शक्ति सीमारहित नही है। बीमार के साथ विना किसी बीमारी के कोई बहुत दिन तक बीमार से भी बदतर हालत मे नही रह सकता। मृत के साथ जीवित अपने को मृत नही समझ सकता। आदर्श की बात दूसरी है। बहन, मानव ' मानव-मन'' यह मानव-मन' '

[यवनिका पतन]

मालव-प्रेम

हरिकृष्ण प्रेमी

पात्र

विजया	:	मालव-कन्या
श्रीपाल	:	विजया का प्रेमी
जयदेव	:	विजया का भाई

[विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ होने से लगभग २५ वर्ष पूर्व का काल। चम्बल-तट का एक ग्राम। विजया नदी-तट की एक शिला पर बैठी हुई गा रही है। समय रात का प्रारम्भ, विजया की वय १६-१७ वर्ष के लगभग है। उज्ज्वल गौरवर्ण, शरीर सुगठित लम्बा, अत्यन्त आकर्षक स्वरूप। आँखों मे आकर्षण के साथ तेज। वेश सुरुचिपूर्ण होते हुए भी उसके स्वभाव के अल्हडपन को व्यक्त करने वाला। सिर से उत्तरीय का पल्लू खिसक भूमि पर गिर गया है। उत्तरीय के अतिरिक्त एक दुपट्टा वक्ष और कन्धे के आसपास लिपटा पडा है। लम्बे बाल वायु मे लहरा रहे हैं।]

विजया—[गान]

जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!
जब नयन मैं मूंदती, वह
छवि दिखा मुझको लुभाता।
जब बढाती हाथ तब
कुछ भी नही है हाथ आता।
धूल मे मिलते अचानक
स्वप्न होकर चूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!

जो सजन बन 'नयन-तारा'
लोचनो मे है समाया।
वह गगन का चाँद होकर
दूर से ही मुस्कराया।
इसलिए थमता नही है
आँसुओ का पूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!
पालने मे श्वास के है
हर घडी भूला भुलाया।
क्यो न उसने प्रेम मेरा
आज तक पहचान पाया?
मै उसी को प्यार करने
के लिए मजबूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!

[विजया गीत गाने मे तल्लीन है। श्रीपाल आकर उसकी नजर बचाकर उसके पास खडा रहता है। श्रीपाल एक बलिष्ठ और सुन्दर नवयुवक है। उसका वेश योद्धा का है। कमर मे तलवार, हाथ मे धनुष, कन्धे पर पीछे की ओर तरकश। वय लगभग २५ वर्ष।]

श्रीपाल—विजया!

विजया—[गाना बन्द करके खडी होकर, उत्तरीय का पल्ला सिर पर डालती हुई।] तुम बडे अशिष्ट हो श्रीपाल!

श्रीपाल—ऐसे कोमल कठ से ऐसे कठोर शब्द शोभा नही देते विजया!

विजया—तुम अपनी सीमा के बाहर जाते हो।

श्रीपाल—मैंने तुम्हारा अपमान किया है क्या, विजया?

विजया—अपमान तो नही किया।

श्रीपाल—फिर ?

विजया—यहाँ एकान्त मे मुझे अस्त-व्यस्त भेष मे देर तक चुपचाप खड़े देखते रहना ।

श्रीपाल—मैं तुम्हे जीवन भर देखना चाहता हूँ, विजया ।

विजया—[किंचित् लज्जा मिश्रित क्रोध से] किस अधिकार से ?

श्रीपाल—जिस अधिकार से चाँद तुम्हे इस समय देख रहा है।

विजया—दूर रहकर आकाश से ?

श्रीपाल—हाँ, तुम मेरे जीवन की प्रेरणा हो, स्फूर्ति हो। तुम्हारी स्मृति मेरे रक्त को गति देती है। तुम्हे पाने की इच्छा करना मेरे जीवन का जीवन है—लेकिन तुम्हे पा लेना मेरे जीवन की मृत्यु है।

विजया—उधर देखते हो, श्रीपाल! कही वर्षा हुई है, इसलिए चम्बल मे जल बढ गया है। धारा के दोनो ओर चट्टानें हैं। जल को फैलने को स्थान नही मिल रहा। वह कितना जोर कर रहा है, कितने वेग से आगे बढ रहा है !

श्रीपाल—हमारे-तुम्हारे बीच मे इससे भी बडी चट्टाने हैं, विजया!

विजया—कौनसी चट्टानें ?

श्रीपाल—तुम्हारा भाई जयदेव ! उसे अपने कुल का अभिमान है। मैं एक साधारण किसान का पुत्र हूँ और तुम भारत की सुप्रसिद्ध मालव जाति की कन्या हो। आकाश की तारिका की ओर पृथ्वी पर पैर रखकर चलने वाला प्राणी कैसे हाथ बढा सकता है ?

विजया—यदि वह तारिका आकाश से उतरकर तुम्हारी गोद मे आ गिरे तो ?

श्रीपाल—मैं उसे स्वीकार नही करूँगा।

विजया—क्यो ?

श्रीपाल—मैं कृपा या दान नही चाहता।

विजया—तो चोरी करना चाहते हो, डाका डालना चाहते हो ? डाका डालना तो कायरता नही है ?

श्रीपाल—मै इतना छोटा नही बनना चाहता कि मुझे अपनी ही चीज की चोरी करनी पडे।

विजया—तब तुम क्या चाहते हो ?

श्रीपाल—बदला ।

विजया—किससे ?

श्रीपाल—तुम्हारे भाई से ।

विजया—अच्छा, तो इसीलिए तुमने शस्त्र पकडे हैं ?

श्रीपाल—जो हल पकडना जानता है, वह शस्त्र पकडना भी जान सकता है।

विजया—लेकिन उसका उचित प्रयोग करना भी जान पाये तब न ?

श्रीपाल—मानवता का तिरस्कार करने वालो—सृष्टि के चिरंतन भाव प्रेम का अपमान करने वालो—के विरुद्ध मेरा शस्त्र होगा । जाता हूँ विजया ! तुम मेरे जीवन की स्फूर्ति हो—मैं तुम्हे प्रणाम करता हूँ ।

[प्रणाम करता है ।]

विजया—तुम जा तो रहे हो, श्रीपाल ! लेकिन मुझे भय है तुम मार्ग भूल जाओगे ।

श्रीपाल—तुम्हारा प्रेम मेरा मार्गदर्शक है ।

[श्रीपाल का प्रस्थान]

विजया—[श्रीपाल की ओर देखती हुई] विक्षिप्त युवक !

[विजया कुछ क्षण स्तब्ध-सी खडी उसी ओर देखती रहती है जिस ओर श्रीपाल गया है । फिर एक लम्बी साँस लेकर शिला पर बैठ जाती है । कुछ क्षण विचारमग्न रहकर वही गीत गाने लगती है । गीत आधा ही हो पाता है कि उसका भाई जयदेव प्रवेश करता है । जयदेव भी गौरवर्ण, बलिष्ठ शरीर, बडी आँखो और रोबदार चेहरे वाला नवयुवक है । सैनिक वेष-भूषा । कपडों से उसका सुसम्पन्न होना प्रकट होता है ।]

जयदेव—[विजया के कन्धे पर हाथ रखकर] विजया !

विजया—[चौंककर] ओह, भइया !

जयदेव—चौंक क्यो उठी, बहन !

विजया—मैं डर गयी थी !

जयदेव—मालव-कन्या होकर डर का नाम लेती है, विजया !

विजया—मैं शस्त्र की धार से नही डरती, सिंह के तीक्ष्ण नखो से

नही डरती । मैं मनुष्य के शारीरिक बल से नही डरती । हिंसा से मैं लड सकती हूं ।

जयदेव—फिर डरती किससे हो, लड किससे नही सकती ?

विजया—मनुष्य के प्रेम से [दीन स्वर मे] भैया !

जयदेव—[विजया के मस्तक पर हाथ रखते हुए] क्या बात है, विजया?

विजया—मैं अपने हृदय पर विजय नहीं पा सकी हूं ! प्राण मे आठो पहर ज्वाला जलती है । तुम्हारी वश-गौरव की दीवार मुझे रोक नही सकती । मैं विद्रोह करूंगी ।

जयदेव—किससे ?

विजया—तुम्हारे अभिमान से । मेरे भाई मालव-कुल-भूषण जयदेव से !

जयदेव—तुम मुझसे युद्ध करोगी ?

विजया—हां ।

जयदेव—जीत सकोगी ?

विजया—अवश्य !

जयदेव—कैसे ?

विजया—अपनी बलि देकर । इस शरीर को— जिसमे ऐसा मालव-रक्त प्रवाहित है, जो मुझे प्रेम के स्वाधीन-प्रदेश मे जाने से रोकता है—चम्बल के उद्दाम प्रवाह मे प्रवाहित करके ।

जयदेव—बहन, तुझे हो क्या गया है ?

विजया—तुम तो सब जानते हो, भैया !

जयदेव—यहां श्रीपाल आया था ?

विजया—हां ।

जयदेव—तभी तुम इतनी चचल हो उठी हो ! विजया, तुम्हें एक काम करना पडेगा ।

विजया—क्या ?

जयदेव—मालव-भूमि को श्रीपाल का मस्तक चाहिए ।

विजया—मालव-भूमि को या तुम्हें ?

जयदेव—मुझे नही, मालव-भूमि को !

विजया—लेकिन उसे तो तुमसे शत्रुता है, मालव-भूमि से नही ।

जयदेव—वह मेरे अपराध का दण्ड मालव-भूमि को देना चाहता है ।

विजया—मालव-भूमि को या मालव-गण को ?

जयदेव—जब विदेशी शासन हमारे देश पर होगा तब क्या कोई जाति पराधीनता से बच सकेगी ?

विजया—विदेशी शासन मालव पर !

जयदेव—हाँ, जिन शको ने सिंध और सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया है, उन्हे श्रीपाल ने मालव पर आक्रमण करने को आमन्त्रित किया है ।

विजया—तुम लोगो का वशाभिमान अपने ही देश मे देश के शत्रु उत्पन्न कर रहा है । तुमने श्रीपाल का अपमान किया है और निराशा उसे शत्रु के पास खीच ले गयी है ।

जयदेव—जिस जाति ने सदा भारत के अग-रक्षक बनकर आततायियो को देश मे आने से रोका है, जिसने सिकन्दर महान की विश्वविजयी यूनानी सेना को हजारो प्राणो की बाजी लगाकर वापस लौट जाने को बाध्य किया, उसे क्यो न अपने ऊपर गर्व हो ? उसे अपनी सैनिकता एव बल-विक्रम पर अभिमान क्यो न हो ?

विजया—किन्तु जो जाति सैनिक नही है, क्या वह मनुष्य ही नही है ? कार्य-विभाजन नीच-ऊँच की दीवारें क्यों खडी करे ?

जयदेव—यह इन बातो पर विचार करने का समय नही है ।

विजया—एक श्रीपाल का मस्तक लेकर देश की रक्षा नही कर सकोगे ।

जयदेव—तू श्रीपाल और देश दो मे से किसे चुनेगी ?

विजया—तुम देश और मानवता दोनो मे से किसे चुनोगे ?

जयदेव—पराधीनता मानवता का सबसे बडा पतन है !

विजया—और प्रेम ?

जयदेव—जो प्रेम देश की हत्या करे उसका गला घोटना ही होगा । श्रीपाल मालवा के मार्गों, नदी-पर्वतो से परिचित है । शक-सैन्य सख्या मे हमसे अधिक है । उनके पास अपार अश्वारोहिणी दल है, अस्त्र-शस्त्र भी अपरिमित हैं । यदि उन्हे इस देश की भूमि से परिचित व्यक्ति मिल जाय

तो परिणाम हमारे लिए भयकर है। सोचो विजया, उस समय हमारे देश का क्या होगा ?

विजया—तुम मेरी हत्या कर दो भैया !

जयदेव—तो तुम देश के महत्त्व को नही समझी। तुम्हारे पिता, तुम्हारे दादा और तुम्हारी न जाने कितनी पीढियो ने इस भूमि की रक्षा मे अपना रक्त सीचा है, बहन ! कितनी बहनो ने अपने भाइयो को रण-भूमि में विसर्जित किया है—कितनी सुन्दरियो ने यौवन के प्रभात काल मे पतियो को स्वर्ग का मार्ग दिखाया है। यह एक विजया या एक श्रीपाल का प्रश्न नही है—यह देश का प्रश्न है। बोल बहन, तू क्या कहती है ?

[विजया चुप रहती है।]

जयदेव—तू सोचना चाहती है, तो सोच। तू मालव-कन्या है, विजया ! मैं अभी आता हूँ।

[जयदेव का प्रस्थान। विजया हतबुद्धि खडी रहती है। फिर वही गीत गुनगुनाने लगती है। श्रीपाल प्रवेश करता है।]

श्रीपाल—विजया !

विजया—अच्छा हुआ तुम आ गये, नही तो मुझे तुम्हारे पास जाना पड़ता !

श्रीपाल—हाँ, मैं आ गया हूँ। मैंने अपना निश्चय बदल दिया है। मैं तुम्हे अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।

विजया—लेकिन श्रीपाल, मैंने भी अपना निश्चय बदल डाला है।

श्रीपाल—क्या ?

विजया—मुझे तुम्हारा मोह छोडना होगा।

श्रीपाल—फिर तुम मेरे पास क्यो आना चाहती थी ?

विजया—हम बचपन मे एक साथ खेले है। अब जीवन का अन्तिम खेल भी तुम्हारे साथ खेल लेना चाहती हूँ। बोलो, खेलोगे श्रीपाल ?

श्रीपाल—अवश्य, विजया !

विजया—तो लाओ, तुम्हारे बलिष्ठ हाथो को मैं अपने उत्तरीय से बाँध दूँ।

श्रीपाल—क्यो ?

विजया—आँख-मिचौनी मे आँखें बन्द करते हैं, लेकिन यह नये प्रकार का खेल है, इसमे हाथ बाँधने पडते हैं। लाओ हाथ बढाओ।

[श्रीपाल हाथ बढाता है, विजया उसके हाथ अपने उत्तरीय से खूब कसकर बांध देती है। दूसरी ओर से जयदेव का प्रवेश।]

श्रीपाल—[जयदेव को देखे बिना ही] अब आगे?

विजया—आगे भैया खेलेंगे। [जयदेव की ओर उँगली उठाती है।]

श्रीपाल—विजया, तुम ऐसा छल कर सकती हो, इसकी मुझे कल्पना भी नही थी।

विजया—मुझे इस बात का अभिमान है कि अपने प्रियतम को मैंने देशद्रोह से बचा लिया।

जयदेव—[श्रीपाल से] तुम मेरे अपराध का दण्ड अपनी मातृभूमि को देना चाहते हो।

विजया—और देश ने तुम्हारे अपराध का दण्ड मुझे देने का निश्चय किया है।

श्रीपाल—जयदेव तुम वीर हो। पुरुषार्थ के लिए प्रसिद्ध मालव-जाति के गौरव हो, तुम छल द्वारा मुझे बन्धन मे बाँधना पसन्द करते हो?

जयदेव—इस समय देश के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न है श्रीपाल! उदारता के लिए अवकाश नही है।

विजया—[श्रीपाल से] प्रियतम, मैं अपने अपराध के लिए क्षमा चाहती हूँ। [गले से हार उतारकर पहनाती हुई] यह मेरे प्रेम का अंतिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयंवर है। आज मालव-जाति की परम्परा के विरुद्ध कृषक-कुमार श्रीपाल को मैं वरमाला पहनाती हूँ। मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही रहूँगी।

श्रीपाल—मेरे हाथ बँधे हुए है, विजया! मैं तुम्हें कुछ प्रतिदान नही दे सकता। अपने प्रेम का कोई प्रमाण नही दे सकता।

विजया—प्रेम प्रतिदान नही चाहता। तुम्हारे चरणो की रज मुझे मिल सकती है? मेरे लिए वही अमूल्य निधि है।

[चरण छूती है।]

भोर का तारा

जगदीशचन्द्र माथुर

पात्र

शेखर	:	उज्जयिनी का कवि
माधव	:	गुप्त साम्राज्य मे एक राज्य-कर्मचारी [शेखर का मित्र]।
छाया	:	शेखर की प्रेयसि, वाद मे पत्नि।

पहला दृश्य

[कवि शेखर का गृह। सब वस्तुएं अस्त-व्यस्त। बायीं ओर एक तख्त पर मैली फटी हुई चद्दर बिछी है। उस पर एक चौकी भी रखी है और लेखनी इत्यादि भी। इधर-उधर भोजपत्र बिखरे हुए पड़े हैं। एक तिपाई भी है, जिस पर कुछ पात्र रखे हुए हैं।

पीछे की ओर एक खिडकी है। बायां दरवाजा अन्दर जाने के लिए है और दायां बाहर से आने के लिए। दीवारो मे कई आले या ताख हैं, जिनमें दीपदान या कुछ और वस्तुएं रखी हैं।

शेखर कुछ गुनगुनाते हुए टहलता है या कभी-कभी तख्त पर बैठकर कुछ लिखता जाता है। जान पडता है वह कविता बनाने मे सलग्न है। तल्लीन मुद्रा। जो कुछ वह कहता है उसे लिखता भी जाता है।]

शेखर— अंगुलियां आतुर तुरत पसार
खीचते नीले पट का छोर

[दुबारा कहता है, फिर लिखता है।]

टंका जिसमे जाने किस ओर
स्वर्ण कण स्वर्ण कण

[पूरा करने के प्रयास मे तल्लीन है, इतने मे बाहर से माधव का

प्रवेश। सासारिकता का भाव और जानकारी उसके चेहरे से प्रकट है। द्वार के पास खडा होकर थोडी देर तक वह कवि की लीला देखता रहता है। उसके बाद—]

माधव—शेखर !

शेखर—[अभी सुना ही नहीं। एक पक्ति लिखकर] 'स्वर्णकण प्रिय को रहा निहार।'

माधव—शेखर !

शेखर—[चौंककर] कौन ? ओह ! माधव !

[उठकर माधव की ओर बढता है।]

माधव—क्या कर रहे हो, शेखर ?

शेखर—यहाँ आओ माधव, यहाँ, [उसके कधो को पकडकर, तख्त पर बिठाता हुआ] यहाँ बैठो। [स्वय खडा है।] माधव, तुमने भोर का तारा देखा है कभी ?

माधव—[मुस्कराते हुए] हाँ ! क्यो ?

शेखर—[बडी गम्भीरतापूर्वक] कैसा अकेला-सा, एकटक देखता रहता है ? जानते हो क्यो ? नही जानते ? [तख्त के दूसरे भाग प बैठता हुआ] बात यह है कि एक बार रजनीबाला अपने प्रियतम प्रभात से मिलने चली, गहरे नीले कपडे पहनकर, जिसमे सोने के तारे टँके थे ज्योही निकट पहुँची, त्योही लाज की आँधी आयी और बेचारी रजनी कं उडा ले चली। [रुककर] फिर क्या हुआ ?

माधव—[कुछ उद्योग के बाद] प्रभात अकेला रह गया ?

शेखर—नही। उसने अपनी अगुलियाँ पसारकर उसके नीले पट का छोर खीच लिया। जानते हो, यह भोर का तारा है न, उसी छोर मे टँका हुआ सोने का कण है, एकटक प्रियतम प्रभात को निहार रहा है। •• क्यो ?

माधव—बहुत ऊँची कल्पना है ! लिख चुके क्या ?

शेखर—अभी तो और लिखूँगा। बैठा ही था कि इतने मे तुम आ गये।

माधव—[हँसते हुए] और तब तुम्हे ध्यान हुआ कि तुम धरती

पर ही बैठे थे, आकाश मे नही। [रुककर] मुझे कोस तो नही रहे हो शेखर ?

शेखर—[भोलेपन से] क्यो ?

माधव—तुम्हारी परियो और तारो की दुनिया मे मैं मनुष्यो की दुनिया लेकर आ गया।

शेखर—[सच्चेपन से] कभी-कभी तो मुझे तुममे भी कविता दीख पडती है।

माधव—मुझमे ? [जोर से हँसकर] तुम अठखेलियाँ करना जानते हो ? [गम्भीर होते हुए] शेखर, कविता तो कोमल हृदयो की चीज है। मुझ जैसे कामकाजी राजनीतिज्ञो और सैनिको के तो छूने भर से मुरझा जाएगी। हम लोगो के लिए तो दुनिया की और ही उलझने बहुत है।

शेखर—माधव, तुमने कभी यह भी सोचा है कि इन उलझनो से बाहर निकलने का मार्ग भी हो सकता है ?

माधव—और हम लोग करते ही क्या है ? रात-दिन मनुष्यो की नयी-नयी उलझने सुलझाने का ही तो उद्योग करते रहते हैं।

शेखर—यही तो नही करते। तुम राजनीतिज्ञ और मन्त्री लोग बडी सजीदगी के साथ अमीरी-गरीबी, युद्ध और सन्धि की समस्याओ को हल करने का अभिनय करते हो परन्तु मनुष्य को इन उलझनो के बाहर कभी नही लाते। कवि इसका प्रयत्न करते हैं पर तुम उन्हे पागल—

माधव—कवि ? [अवहेलनापूर्वक] तुम उलझनो से बाहर निकलने का प्रयास नही करते, तुम उन्हें भूलने का प्रयास करते हो। तुम सपना देखते हो कि जीवन सौन्दर्य है, हम जागते रहते हैं और देखते रहते हैं कि जीवन कर्तव्य है।

शेखर—[भावुकता से] मुझे तो जहाँ सौन्दर्य दीख पडता है, वहाँ कविता दीख पडती है, वही जीवन दीख पडता है, [स्वर बदलकर] माधव! तुमने सम्राट के भवन के पास, राज-पथ के किनारे उस अंधी भिखमगी को कभी देखा है ?

माधव—[मुस्कराहट रोकते हुए] हाँ।

शेखर—मैं उसे सदा भीख देता हूँ। जानते हो क्यो ?

माधव—क्यो ? [कुछ सोचने बाद] दया सज्जनस्य भूपणम्।'

शेखर—दया ? हूँ! [ठहरकर] मैं तो उसे इसलिए भीख देता हूँ क्योंकि मुझे उसमे एक कविता, एक लय, एक व्यथा झलक पडती है। उसका गहरा झुरियोदार चेहरा, उसके काँपते हुए हाथ, उसकी आँखो के बेबस गड्ढे [एक तरफ एकटक देखते हुए मानो इस मानसिक चित्र मे खो गया हो] उसकी झुकी हुई कमर—माधव, मुझे तो ऐसा जान पडता है मानो किसी शिल्पी ने उसे इस ढाँचे मे ढाला हो।

माधव—[इस भाषण से उसका अच्छा खासा मनोरंजन हो गया जान पडता है। खडे होकर शेखर पर शरारत-भरी आँखें गडाते हुए] शेखर, टाट मे रेशम का पैवन्द क्यो लगाते हो। ऐसी कविता तो तुम्हे किसी देवी की प्रशसा मे करनी चाहिए थी।

शेखर—[सरल भाव से] किस देवी की ?

माधव—[अर्थपूर्ण स्वर से] यह तो उसके पुजारी से पूछो।

शेखर—मैं तो नही जानता किसी पुजारी को।

माधव—अपने को आज तक किसी ने जाना है, शेखर ?

[हँस पडता है। शेखर कुछ समझकर झेंपता-सा है]

•• पागल। [गम्भीर होकर बैठते हुए] शेखर, सच बताओ तुम छाया को प्यार करते हो ?

शेखर—[मन्द, गहरे स्वर मे] कितनी बार पूछोगे ?

माधव—बहुत प्यार करते हो ?

शेखर—माधव, जीवन मे मेरी दो ही तो साधना हैं, [तख्त से उठकर खिडकी की ओर बढता हुआ] छाया का प्यार और कविता।

[खिडकी के सहारे दर्शकों की ओर मुँह करके खडा हो जाता है]

माधव—और छाया ?

शेखर—[वही गहरा स्वर] हम दोनो नदी के दो किनारे हैं, जो एक दूसरे की ओर मुडते है पर मिल नही पाते।

माधव—[उठकर शेखर के कधे पर हाथ रखते हुए] सुनो शेखर, नदी सूख भी तो सकती है!

शेखर—नहीं माधव, उसके भाई देवदत्त से किसी तरह की आशा करना व्यर्थ है। मेरे लिए तो उनका हृदय सूखा हुआ है।

माधव—क्यो ?

शेखर—तुम पूछते हो क्यो ? तुम तो सम्राट स्कदगुप्त के दरबारी हो। देवदत्त एक मन्त्री है। भला एक मन्त्री की बहन का एक मामूली कवि से क्या सम्बन्ध ?

माधव—मामूली कवि ! शेखर, तुम अपने को मामूली कवि समझते हो ?

शेखर—और क्या समझूं ? राजकवि ?

माधव—सुनो शेखर, तुम्हे एक समाचार सुनाता हूँ।

शेखर—समाचार ?

माधव—हाँ ! मैं कल रात को राज-भवन गया था।

शेखर—इसमे तो कोई नयी बात नही। तुम्हारा तो काम ही यह है।

माधव—नही, कल एक उत्सव था। स्वय सम्राट ने कुछ लोगो को बुलाया था। गाने हुए, दावत हुई। एक युवती ने बहुत सुन्दर गीत सुनाया। सम्राट तो उस गीत पर रीझ गये।

शेखर—[उकताकर] आखिर तुम यह सब मुझे क्यो सुना रहे हो माधव ?

माधव—इसलिए कि सम्राट ने उस गीत बनाने वाले का नाम पूछा। पता चला कि उसका नाम था—शेखर।

शेखर— [चौंककर] क्या ?

माधव—अभी और तो सुनो ! उस युवती ने सम्राट से कहा कि अगर आपको यह गाना पसन्द है तो इसके लिखने वाले कवि को अपने दरबार मे बुलाइए। अब कल से वह कवि महाराजाधिराज सम्राट स्कद-गुप्त विक्रमादित्य के दरबार मे जाएगा।

शेखर—मैं ?

माधव—[अभिनय करते हुए, झुककर] श्रीमान्, क्या आप ही का नाम शेखर है ?

शेखर—मैं जाऊँगा सम्राट के दरबार में ? माधव, सपना तो नही देख रहे हो ?

माधव—सपने तो तुम देखा करते हो। ' लेकिन अभी मेरा समाचार पूरा कहाँ हुआ है ?

शेखर—हाँ, वह युवती कौन है ?

माधव—अब यह भी बताना होगा ? तुम भी बुद्धू हो। क्या इसी बूते पर प्रेम करने चले थे ?

शेखर—ओह ! छाया ? [माधव का हाथ पकडते हुए]··· तुम कितने अच्छे हो !

माधव—और सुनो ' सम्राट ने देवदत्त को आज्ञा दी है कि वह तक्षशिला जाकर वहाँ के क्षत्रप वीरभद्र के विद्रोह को दबाएँ। आर्य देवदत्त के साथ मैं भी जाऊँगा, उनका मन्त्री बनकर। समझे ?

शेखर—[स्वप्न मे] तो क्या सच ही छाया ने कहा ? सच ही !

माधव—शेखर, आठ दिन बाद आर्य देवदत्त और मैं तक्षशिला चल देंगे। उसके बाद छाया कहाँ रहेगी ? भला बताओ तो ?

शेखर—माधव ! [माधव हँस पड़ता है] इतना भाग्य ? इतना ? विश्वास नही होता।

माधव—न करो विश्वास ! लेकिन भलेमानस, छाया क्या इस कूडे मे रहेगी ? ये बिखरे हुए कागज, टूटी चटाई, फटे हुए वस्त्र ! शेखर लापरवाही की भी सीमा होती है।

शेखर—मैं कोई इन बातो की परवाह करता हूँ ?

माधव—तो फिर ?

शेखर—मैं परवाह करता हूँ फूल की पखुडियो पर जगमगाती हुई ओस की, सध्या मे सूर्य की किरणो को अपनी गोदी मे समेटने वाले बादल के टुकडो की, सुबह को आकाश के कोने पर टिमटिमाने वाले तारे की—

माधव—एक चीज रह गयी।

शेखर—क्या ?

माधव—जिसे तुम दिन मे वृक्षो के नीचे फैली देखते हो।

[उठकर खडा हो जाता है]

शेखर—वृक्षो के नीचे ?

माधव—जिसे तुम दर्पण मे झलकती देखते हो।

शेखर—दर्पण मे ?

माधव—जिसे तुम अपने हृदय मे हमेशा देखते हो।

[निकट आ गया है]

शेखर—[समझकर, वच्चो की तरह] छाया।

माधव—[मुस्कराते हुए] छाया ?

[पर्दा गिरता है]

दूसरा दृश्य

[उज्जयिनी मे आर्य देवदत्त का भवन, जिसमे अव शेखर और छाया रहते है। कमरा सजा हुआ साफ है। दीवारो पर कुछ चित्र खिचे हुए हैं। कोने मे धूपदान है। सामने तख्त पर चटाई और लिखने-पढने का सामान है। बरावर मे एक छोटी चौकी पर कुछ ग्रन्थ रखे हुए हैं। दूसरी ओर एक पीढा है जिसके निकट मिट्टी की, किन्तु कलापूर्ण एक अँगीठी रखी हुई हे। दीवार के एक भाग पर एक अलगनी है, जिस पर कुछ धोतियाँ इत्यादि टँगी है।

छाया—सौन्दर्य की प्रतिमा, चाचल्य और उन्माद और गाम्भीर्य का जिसमे स्त्री-सुलभ सम्मिश्रण है—गृहस्वामिनी होने के नाते कमरे की सव वस्तुएँ ठीक-ठीक स्थान पर सम्हालकर रख रही है! साथ ही कुछ गुन-गुनाती भी जाती है। जाडा होने के कारण तापने के लिए उसने अँगीठी मे अग्नि प्रज्वलित कर दी है। कुछ देर बाद पीढे पर बैठकर वह अँगीठी को ठीक करती हैं। उसकी पीठ द्वार की ओर है। अपने कार्य और गान मे इतनी सलग्न है कि उसे बाहर पैरों की आवाज नहीं सुनायी देती है।]

प्यार की है क्या यह पहचान ?

चाँदनी का पाकर नव स्पर्श, चमक उठते पत्ते नादान

पवन को परस सलिल की लहर, नृत्य मे हो जाती लयमान

सूर्य का सुन कोमल पद-चाप, फूट उठता चिड़ियो का गान
तुम्हारी तो प्रिय केवल याद, जगाती मेरे सोये प्राण
प्यार की है क्या यह पहचान ?

[धीरे से शेखर का प्रवेश। कन्धे और कमर पर ऊनी दुशाला है, बगल मे ग्रन्थ। गले मे फूलो की माला है। द्वार पर चुपचाप खडा होकर मुस्कराते हुए छाया का गीत सुनता है।]

शेखर—[थोडी देर बाद, धीरे से] छाया! [छाया नहीं सुन पाती है। गाना जारी है, फिर कुछ समय बाद] छाया!

छाया—[चौंककर खडी हो जाती है, एक साथ मुख फेरकर] ओह!

शेखर—[तख्त की ओर बढता हुआ] छाया, तुम्हे एक कहानी मालूम है ?

छाया—[उत्सुकतापूर्वक] कौनसी ?

शेखर—[छोटी चौकी पर पहले तो अपनी बगल वाला ग्रन्थ रखता है, और फिर उस पर दुशाला रखते हुए] एक बहुत सुन्दर-सी।

छाया—सुनें, कैसी कहानी है।

शेखर—[बैठकर] एक राजा के यहाँ एक कवि रहता था। युवक और भावुक। राजभवन मे सब लोग उसे प्यार करते थे, राजा तो उस पर निछावर था। रोज सुबह राजा उसके मुँह से नयी कविता सुनता, नयी और सुन्दर कविता।

छाया—हूँ ?

[पीढ़े पर बैठ जाती है, चिबुक हथेली पर टेकती है]

शेखर—परन्तु उसमे एक बुराई थी।

छाया—क्या ?

शेखर—वह अपनी कविता केवल सुबह के समय सुनाता था। यदि राजा उससे पूछता कि तुम दोपहर या सध्या को अपनी कविता क्यो नही सुनाते तो वह उत्तर देता मैं केवल रात के तीसरे पहर मे कविता लिख सकता हूँ।

छाया—राजा उससे रुष्ट नही हुआ ?

शेखर—नही। उसने सोचा कवि के घर चलकर देखा जाए कि

इसमे रहस्य क्या है। रात का तीसरा पहर होते ही राजा वेश वदलकर कवि के घर के पास खिडकी के नीचे वैठ गया।

छाया—उसके वाद ?

शेखर—उसके बाद राजा ने देखा कि कवि लेखनी लेकर तैयार वैठ गया। थोडी देर मे कही से वहुत मधुर, वहुत सुरीला स्वर राजा के कान मे पडा। राजा झूमने लगा और कवि की लेखनी आप से आप चलने लगी।

छाया—फिर ?

शेखर—फिर क्या ? राजा महल को लौट आया और उसके बाद उसने कवि से कभी यह प्रश्न नही पूछा कि वह सुवह ही क्यो कविता सुनाता था। भला बताओ तो क्यो नही पूछा ?

छाया—वताऊँ ?

शेखर—हाँ।

छाया—राजा को यह मालूम हो गया कि उस गायिका के स्वर मे ही कवि की कविता थी। और वताऊँ ?

[खडी हो जाती है]

शेखर—[मुस्कराते हुए] छाया, तुम

छाया—[टोककर, शीघ्रता और चचलता के साथ] वह गायिका और कोई नहीं, उस कवि की पत्नी थी। और वताऊँ ? उस कवि को कहानी सुनाने का बहुत शौक था, झूठी कहानी ! और बताऊँ ? उस कवि के बाल लम्बे थे, कपडे ढीले-ढाले, गले मे उसके फूलो की माला थी, माथे पर ··

[इस बीच में शेखर की मुस्कराहट हलकी हँसी मे परिणित हो गयी है, यहाँ तक कि इन शब्दो तक पहुँचते-पहुँचते दोनो जोर से हँस पड़ते हैं]

शेखर—[थोडी देर बाद गम्भीर होते हुए] लेकिन छाया, तुम्ही बताओ, तुम्हारे गान, तुम्हारी प्रेरणा, तुम्हारे प्रेम के बिना मेरी कविता क्या होती ? तुम तो मेरी कविता हो।

छाया—[बड़े गम्भीर, उलाहना-भरे स्वर मे] प्रत्येक पुरुष के लिए स्त्री एक कविता है।

शेखर—क्या मतलब तुम्हारा ?

छाया—कविता तुम्हारे सूने दिलो मे सगीत भरती है, स्त्री भी तुम्हारे ऊबे हुए मन को बहलाती है। पुरुष जब जीवन की सूखी चट्टानो पर चढता-चढता थक जाता है तब सोचता है चलो थोडा मन-बहलाव ही कर लें। स्त्री पर अपना सारा प्यार, अपने सारे अरमान निछावर कर देता है, मानो दुनिया मे और कुछ हो ही न। और उसके बाद जब चाँदनी बीत जाती हे, जब कविता भी नीरव हो जाती है, तब पुरुष को चट्टाने फिर बुलाती है और वह ऐसे भागता है मानो पिजडे से छूटा हुआ पछी! और स्त्री के लिए फिर वही अँधेरा, फिर वही सूनापन!

शेखर—[मन्द स्वर मे] छाया, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो।

छाया—क्या एक दिन तुम मुझे भी ऐसे छोडकर न चले जाओगे?

शेखर—लेकिन छाया, मैं तुम्हे छोडकर कहाँ जा सकता हूँ?

छाया—उहूँ, मैं नही मान सकती।

शेखर—सुनो तो, मेरे लिए तो जीवन मे ऐसी सूखी चट्टाने थोडे ही हैं। मेरी कविता ही मेरी हरी-भरी वाटिका है। मैं उसे प्यार करता हूँ क्योकि मुझे उसमे सौन्दर्य दीखता है। मै तुम्हे प्यार करता हूँ क्योकि मुझे तुम्हारे हृदय मे सौन्दर्य दीखता है। जिस रोज मैं तुमसे दूर हो जाऊँगा, उस रोज मैं सौन्दर्य से दूर हो जाऊँगा। अपनी कविता से दूर हो जाऊँगा। [कुछ रुककर] मेरी कविता मर जाएगी।

छाया—नही शेखर, मैं मर जाऊँगी, किन्तु तुम्हारी कविता रहेगी, बहुत दिन रहेगी।

शेखर—मेरी कविता [कुछ देर बाद] छाया, आज मै तुम्हे एक बडी विशेष बात बताने वाला हूँ, एक ऐसा भेद जो अब तक मैंने तुमसे छिपा रखा था।

छाया—रहने दो, तुम सदा ऐसे भेद और ऐसी कहानियाँ सुनाया करते हो।

शेखर—नही। अच्छा, तनिक उस दुशाले को उठाओ। [छाया उठाती है] उसके नीचे कुछ है। [छाया उस ग्रन्थ को हाथ मे लेती है] उसे खोलो' क्या है?

छाया—[आश्चर्यान्वित होकर] ओह, [ज्यों-ज्यो छाया उसके

पन्ने उलटती जाती है, शेखर की प्रसन्नता बढती जाती है] 'भोर का तारा'। उफ्फोह ! यह तुमने कब लिखा ? मुझसे छिपकर ?

शेखर—[हँसते हुए। विजय का-सा भाव] छाया, तुम्हे याद है उस दिन को जब माधव के साथ मैं तुम्हारे भाई देवदत्त से मिलने इसी भवन मे आया था ?

छाया—[शेखर की ओर थोडी देर देखकर] उस दिन को कैसे भूल सकती हूँ, शेखर ? उसी दिन तो भैया को तक्षशिला जाने की आज्ञा मिली थी, उसी दिन तो उन्होंने तुम्हे और मुझे माताजी का वह पत्र दिखाया था जिसने हम दोनों को सर्वदा के लिए बाँध दिया।

शेखर—हाँ छाया, उसी दिन, उसी दिन मैंने इस महाकाव्य को लिखना आरम्भ किया था। [गहरे स्वर मे] आज वह समाप्त हो गया।

छाया—शेखर, यह हमारे प्रेम की अमर स्मृति है।

शेखर—उसे यहाँ लाओ। [हाथ मे लेकर चाव से खोलता हुआ] 'भोर का तारा'। छाया, यह काव्य बडी लगन का फल है। कल मैं सम्राट की सेवा मे ले जाऊँगा। और फिर, फिर जब मैं उस सभा मे इसे सुनाना आरम्भ करूँगा, तब, तब, सारे उज्जयिनी की आँखें मेरे ऊपर होगी। महाकाव्य, महाकाव्य ! उस समय सम्राट गद्गद् हो जाएँगे और मैं कवियो का सिरमौर हो जाऊँगा। छाया, बरसो बाद दुनिया पढ़ेगी—कविकुल-शिरोमणि शेखरकृत 'भोर का तारा'—हा, हा, हा !

[विभोर हो जाता है। छाया उसकी ओर एकटक देख रही है। सहसा उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखा खिच जाती है। शेखर हँस रहा है।]

छाया—शेखर ! [वह हँसे जा रहा है।] शेखर !

[शेखर की दृष्टि उस पर पडती है।]

शेखर—[सहसा चुप होकर] क्यो छाया, क्या हुआ तुमको ?

छाया—[चिन्तित स्वर मे] शेखर !

[चुप हो जाती है]

शेखर—कहो।

छाया—शेखर, तुम इसे सम्हालकर रखोगे न ?

शेखर—बस, इतनी ही-सी बात ?

छाया—मुझे डर लगता है कि 'कि' कही यह नष्ट न हो जाए, कोई इसे चुरा न ले जाए और फिर तुम—

शेखर—हा, हा, हा, पगली ! ऐसा क्यो होने लगा ? सोचने से ही डर गयी ? छाया, छाया, तेरे लिए तो आज प्रसन्न होने का दिन है, वहुत प्रसन्न !·· इधर देखो छाया, हम लोग कितने सुखी हैं ! और तुम ? जानती हो, तुम कौन हो ? तुम हो तक्षशिला के अधिपति देवदत्त की वहन और उज्जयिनी के सबसे वडे कवि शेखर की पत्नी !···तक्षशिला का अधिपति और उज्जयिनी का कवि । हूँ-हूँ-हूँ ।·· क्यो छाया ?

छाया—[मन्द स्वर मे] तुम सच कहते हो, शेखर, हम लोग बहुत सुखी है ।

शेखर—[मग्नावस्था मे] वहुत सुखी !

[सहसा वाहर कोलाहल । घोडे की टापो की आवाज । शेखर और छाया छिटककर चैतन्य खड़े हो जाते हैं । शेखर द्वार की ओर बढता है ।]

शेखर—कौन है ?

[सहसा माघव का प्रवेश, थकित और श्रमित, शस्त्रो से सुसज्जित, पसीने से नहा रहा है । चेहर पर भय और चिन्ता के चिह्न हैं ।]

शेखर और छाया—माधव !

शेखर—माधव तुम यहाँ कहाँ ?

माधव—[दोनो पर दृष्टि फेंकता हुआ] शेखर, छाया ! [फिर उस कमरे पर डरती-सी आँखें डालता है मानो उस सुरम्य घोसले को नष्ट करने से भय खाता हो। कुछ देर वाद बड़े प्रयत्न और कष्ट के साथ बोलता है] मैं तुम दोनो से भीख माँगने आया हूँ ।

[छाया और शेखर के आश्चर्य का ठिकाना नहीं है ।]

छाया—भीख माँगने, तक्षशिला से आये हो ?

शेखर—तक्षशिला से ? माधव, क्या बात है ?

माधव—[धीरे-धीरे, मजबूती के साथ बोलना प्रारम्भ करता है, परन्तु ज्यों-ज्यो बढता जाता है, त्यो-त्यो स्वर मे भावुकता आ. . जाती

हैं ।] हाँ, मैं तक्षशिला मे ही आ रहा हूँ । यहाँ तक कैसे आ गया, यह मैं नही जानता । हाँ, यह जानता हूँ कि आज गुप्त साम्राज्य सकट मे है और हमे घर-घर भीख माँगनी पडेगी ।

शेखर— गुप्त साम्राज्य सकट मे ' क्या कह रहे हो माधव ?

माधव—[सजीदगी के साथ] शेखर, पश्चिमोत्तर सीमा पर आग लग चुकी है । हूणो का सरदार तोरमाण भारत पर चढ आया है ।

छाया—[भयाक्रान्त होकर] तोरमाण !

छाया—[सहसा माधव के निकट जाकर भय से कातर हो उसकी भुजा पकड़ते हुई ।] तक्षशिला ?

माधव—उसने सिन्धु नदी को पार कर लिया है, उसने अम्भी राज्य को नष्ट कर दिया है । उसकी सेना तक्षशिला को पैरो तले रौद रही है ।

माधव—[उसी स्वर मे] सारा पचनद आज उसके भय से काँप रहा है । एक के बाद एक गाँव जल रहे है । हत्याएँ हो रही है, अत्याचार हो रहा है । शीघ्र ही सारा आर्यावर्त्त पीडितो के हाहाकार से गूँजने लगेगा । शेखर, छाया—मैं तुमसे भीख माँगता हूँ—नयी भीख माँगता हूँ—सम्राट स्कन्दगुप्त की, साम्राज्य की, देश की इस सकट मे मदद करो । [बाहर भारी कोलाहल । शेखर और छाया जडवत खड़े है] देखो बाहर जनता उमड रही है । शेखर, तुम्हारी वाणी में ओज है, तुम्हारे स्वर मे प्रभाव । तुम अपने शब्दो के बल पर सोयी हुई आत्माओ को जगा सकते हो, युवको मे जान फूँक सकते हो । [शेखर सुने जा रहा है । चेहरे पर भावो का आवेग । मस्तक पर हाथ रखता है] आज साम्राज्य को सैनिको की आवश्यकता है । शेखर, ओजमयी कविता के द्वारा तुम गाँव-गाँव मे जाकर वह आग फैला दो जिससे हजारो और लाखो भुजाएँ अपने सम्राट और अपने देश की रक्षा के लिए शस्त्र हाथ मे ले लें । [कुछ रुक-कर, शेखर के चेहरे की ओर देखता है। उसकी मुद्रा बदल रही है, जैसे कोई भीषण उद्योग कर रहा हो ।] कवि, देश तुमसे यह बलिदान माँगता है ।

छाया—[अत्यन्त दर्द-भरे करुण स्वर मे] माधव ! माधव !!

माधव—[मुडकर छाया की ओर कुछ देर देखता है, फिर थोडी देर

बाद] छाया, उन्होने कहा था, 'मेरे प्राण क्या चीज हैं, इसमें तो सहस्रो मिट गये और सहस्रो को मिटना है।'

शेखर—[मानो नींद से जगा हो] किसने ?

माधव—आर्य देवदत्त ने, अन्तिम समय!

छाया—[जैसे विजली गिरी हो] माधव, माधव, तो क्या भैया

माधव—उन्होने वीरगति पायी है, छाया। [छाया पृथ्वी पर घुटनों पर गिर जाती है। चेहरे को हाथो से ढँक लिया है, इस बीच में माधव कहे जाता है, शेखर एक बार घूमता है। उसके मुख से प्रकट होता है मानो डूबते को सहारा मिलने वाला है] तक्षशिला से चालीस मील दूर विद्रोही वीरभद्र की खोज मे वह हूणों के दल के निकट जा पहुंचे। वहाँ उन्हे ज्ञात हुआ कि वीरभद्र हूणो से मिल गया है। उनके वीस सैनिक आगे हूणो मे फँसे हुए थे। वे तक्षशिला लौट सकते थे और अपने प्राण वचा सकते थे। परन्तु एक सच्चे सेनापति की भाँति उन्होने अपने सैनिको के लिए अपने प्राण सकट मे डाल दिये और मुझे तक्षशिला और प्राटलिपुत्र को चेतावनी देने के लिए भेजा। मैं आज

[सहसा रुक जाता है; क्योंकि उसकी दृष्टि शेखर पर जा पडती है। शेखर चौकी के पास खडा है। उसके चेहरे पर दृढता और विजय का भाव है। बाहर कोलाहल कम है। शेखर अपना हाथ वढाकर अपने ग्रन्थ 'भोर का तारा' को उठाता है। इसी समय माधव की दृष्टि उस पर पडती है। शेखर पुस्तक को कुछ देर चाव से, बिछुडन से, प्रेम से देखता है। उसके बाद आगे वढकर अँगीठी के निकट जाकर उसमे जलती हुई अग्नि को देखता है और धीरे धीरे उस पुस्तक को फाडता है। इस आवाज को सुनकर छाया अपना मुख ऊपर को करती है।]

छाया—[उसे फाडते हुए देखकर] शेखर!

[लेकिन शेखर ने उसे अग्नि में डाल दिया है। लपटें उठती हैं। छाया गिर-गिर पडती है। शेखर लपटों की तरफ देखता है, फिर छाया की ओर दृष्टिपात करता है, एक सूखी हँसी के बाद बाहर चल देता है। कोलाहल कम होने के कारण उसके पैरों की आवाज थोड़ी देर तक सुनायी देती है।]

[माधव द्वार की ओर बढता है]

छाया—[अत्यन्त पीड़ित स्वर मे] माधव तुमने तो मेरा प्रभात नष्ट कर दिया।

[माधव उसके ये शब्द सुनकर बाहर जाता जाता रुक जाता है। मुड़कर छाया की ओर देखता है और पीछे की खिड़की के निकट जाकर उसे खोल देता है। इससे बाहर का कोलाहल स्पष्ट सुनायी देता है। शेखर और उसके साथ पूरे जनसमूह के गाने का स्वर सुन पड़ता है।]

अभय जाग जनता जनार्दन !
कहाँ है भयकर तरगें, कहाँ सो रहा क्रुद्ध गर्जन ?
महोदधि तनिक तो उमड तू, बुलाता तुझे मैं प्रभजन।
अभय जाग जनता जनार्दन !

[शेखर का स्वर तीव्र है। माधव खिड़की को बन्द कर देता है। पुन. शान्ति। इसके बाद माधव मन्द परन्तु दृढ स्वर मे बोलता है।]

माधव—छाया, मैंने तुम्हारा प्रभात नष्ट नही किया। प्रभात तो अब होगा। शेखर अब तक भोर का तारा था। अब वह प्रभात का सूर्य होगा।

[छाया धीरे-धीरे अपना मस्तक उठाती है।]

[पर्दा गिरता है]

स्ट्राइक

भुवनेश्वर

पात्र

पहला दृश्य

पुरुष [श्रीचन्द]

स्त्री

दूसरा दृश्य

तीन पुरुष

एक युवक

पुरुष [श्रीचंन्द]

तीसरा दृश्य

पहले दृश्य का पुरुष

दूसरे दृश्य का युवक

[एक मध्यवर्गीय बँगले के खाने का कमरा, जो बरामदे मे पर्दे डालकर बना लिया गया है। एक बडा-सा साइड टेबिल जिस पर चीनी के बरतन, प्लेट-प्याले नुमायशी ढंग से रखे हैं। पास में एक छोटी मेज पर फोर्क, क्वाकर ओट्स, पालसन बटर और अचार के दो अमृतवान सजे हैं। खाने की मेज अण्डाकार है, जिसके चारो तरफ चार कुर्सियाँ पडी हैं। दो पर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हैं, पुरुष, सुपुरुष, स्त्री कुछ बोले तो पता चले, कम से कम दस मिनट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी रही है।]

स्त्री—[चाय का प्याला घुमाते हुए] तो सरदार साहब बहुत चौंके ?

पुरुष—[अनमना] हूँ...

स्त्री—[कुछ कहने के लिए साँस भरकर रह जाती है।]

पुरुष—तो आज नौकर दोनो छुट्टी ले गये हैं ?...

स्त्री—[दो घूँट चाय पीकर रूमाल से होंठ पोंछती हुई] सरदार साहब की डाइरेक्टरो मे तो खूब चलती है ?

पुरुष—[हास्यास्पद उत्साह से] यही ! यही तो इन कम्बख्तो को मिटा देता है। यह समझते है कि बहुमत उन्हे गदहे से बछडा बना देगा ! कम्बख्त यह नही समझते कि अब बहुमत के माने ही बदल गये है। बहुमत थोडे से बेजरर अधमरे केंचुओ का नाम थोडा ही है ! वह शक्ति का नाम है और वह हमेशा एक आदमी—एक—आदमी मे होती है।

[स्त्री चुपचाप चाय उँडेलती है और दूध डालकर ध्यान से प्याले को

देख रही है। पुरुष बेरहमी से मक्खन लगा रहा है और कुछ देर खामोशी-सी हो जाती है।]

पुरुष—सरदार साहब, राजा साहब, बाबू साहब, सब के साथ यही दिक्कत है। कम्बख्त जीवन की कला नहीं जानते। म्रियमान से निहत्थे पाजियो की तरह यह मौत तक खिसकते जाते हैं। जब उन्होने देखा कि मैं उनसे भीख नही माँगता, उनके तलवे नही सहलाता, ग्रह नही बनाता, षड्यन्त्र नही करता तो मुंह बाकर रह गये। जी हाँ, मुंह बाकर रह गये। [प्याला रखकर हँसता है] यह कुछ समझते-बूझते तो हैं नही। जब कभी इनके ठोकर लगती है, तो बस खडे होकर मुंह बा देते हैं। [आवाज धीमी करता है] लेकिन कपडो के नीचे यह सब इज्जतदार मोटे घुडमुहे, गदहे हैं गदहे। हाँ, व्यवस्थित समाज मे इनका एक लाभ जरूर है—यह ठोकरें खूब झेल लेते है। डिविडेण्ड कम हुआ, इनके हाथ-पाँव फूल गये, किसी कॉलिज के चिविल्ले ने किताबी अग्रेजी मे स्ट्राइक की धमकी दे दी, इनके हाथ-पाँव फूल गये, यह बौखला गये। [हाथ को नाटकीय ढग से हिलाते हुए] मैंने साफ ऐलान कर दिया कि मैं तीन साल तक कोई डिविडेण्ड नही बाँटूंगा। [भद्दी तौर से अँगूठा दिखाता है।] अँगूठा कर लो मेरा।

[स्त्री चाय खत्म करके घडी की तरफ देखती है और भँवों मे कुछ घुसपुसाती है, पुरुष बेचारा क्या समझे! वह एकाग्र खाता रहता है। कमरे मे फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

पुरुष—[ऊबा-सा] तो आज नौकर दोनो गायब? मेम साहब ने चाय बनायी है, पर शाम को क्या होगा? मेरी तो मीटिंग शायद आठ पर खतम होगी।

स्त्री—[रूमाल सेअगुलियाँ मलते हुए] मैं मैं[सहसा]तो जा रही हूँ।

पुरुष—कहाँ जा रही हो? कहाँ?

स्त्री—[बाहर की तरफ रूमाल हिलाते हुए] वहाँ।

पुरुष—[बाहर की तरफ देखता है] वहाँ? बाजार, शापिंग के लिए?

स्त्री—नही, मैं तो लखनऊ जा रही हूँ, आखिरी जी आई पी से लौट आऊँगी।

पुरुष—[अपना आश्चर्य भरसक छिपाते हुए] लखनऊ, जी आई पी, आखिर क्यो !

स्त्री—[चाय खत्म कर चुकी है] कुछ नही, ऐसे ही घूमने। सरदार साहब की बीवी है, मिसेज निहाल हैं, मैं हूँ, मिस मित्तर है—उन्ही को कुछ काम है, न जाने रेडियो लेने जा रही है क्या ?

पुरुष—[अगुली पोंछ रहा है] तो यह कहो ! [रुककर] लेकिन कार क्यो नही ले जाती ?

स्त्री—नही, कार नही। ज्यादा से ज्यादा जी आई पी से लौट आएँगे। वही शायद आखिरी गाडी है।

पुरुष—[जेब से सोने की जेब-घडी निकालकर और उसे वास्केट पर पोछकर] तो जी आई पी यहाँ आती है १०-१५ पर, तुम यहाँ १०-२५ पर आ जाओगी। कार मैं पम्प पर छोड दूंगा—अरे मिलखीराम के पेट्रोल पम्प पर। खाने के लिए यह करना कि कार मे टिफिन कैरियर रख लूंगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरा ले आना, न होगा रोटियाँ यही बन जाएँगी [जेब मे घडी रख लेता है और जेबें टटोलकर सस्ता सिगरेट केस निकालता है और एक सि्ारेट जलाता है। धुआँ छोडते हुए] अब सरदार साहब के मिजाज ठिकाने आ जाएँगे। कोई उसूल नही, कोई हौसला नही। भला इसे जिन्दगी कहते है ?

स्त्री—तो जी आई पी. यहाँ साढे दस पर आती है ?

पुरुष—[फिर घडी निकाल लेता है और फिर उसे पोछता है] नही, १०-१५ पर। और जी आई पी की गाडियाँ लेट नही होती—यह ई आई आर नही है। [जैसे कोई अपनी ही चीज का बखान कर रहा हो] दुनिया का भविष्य उचित समय पर उचित काम करने वालो के हाथ मे है। दुनिया की सारी दौलत, सारा आराम, सारा जस उसका है जो अपनी जगह पर कायम है और काम का जो छोटा हिस्सा उसका है उसे मशीन की तरह पूरा कर रहा है। एक बहुत बडा लेखक है बरनार्ड शा। उसने कहा है ..

स्त्री—[सहसा ऊबी-सी] मिसेज निहाल ने कहा तो था कि वह अपनी कार भेजेंगी। तुम्हे मीटिंग मे कब जाना है ?

पुरुष—[चौंककर घडी की तरफ देखता है] साढे चार ! तो लो मैं चला—[गुनगुनाता है]—चार बजकर सत्रह—तीन या चार मिनट मुझे ड्यूक कम्पनी में लगेंगे, चार-इक्कीस, खैर, तो चलो तुम्हे पिंडी के यहाँ छोड दूंगा, वहाँ से' या आओ निहाल के यहाँ तक ! दो मिनट की ही तो बात है।

स्त्री—[अँगडाई लेते हुए] अच्छा ? [खडी हो जाती है] यही साडी पहने रहे या दूसरी [मुडकर देख रही है] पहन ले।

पुरुष—[सिगरेट दो-तीन बार चूसकर फेंकते हुए] जैसा तुम्हारा जी चाहे, लेकिन तुम्हे मेरे सर की कसम, बतला दो लखनऊ मे क्या है ?

स्त्री—[बरबस मुस्कराती हुई] लखनऊ मे ? बहुत-सी चीजें, छोटा-बडा इमामबाडा, चिडियाघर हजरतगंज, अमीना'

पुरुष—नही, मैं पूछता हूँ, आज शाम को कोई खास बात ?

स्त्री—[जाते हुए] आज शाम को खास बात ? कोई खास बात नही है।

पुरुष—[जैसे एक बडी मुहिम के लिए तैयार होते हुए] यहाँ आओ, यहाँ बैठो, [स्त्री घूमकर खडी हो जाती है] बैठो, मैं देखता हूँ, तुम कुछ दिनो से ऐसी ही हो रही हो। मैं जानता हूँ, तुम्हारी यहाँ तबीयत नहीं बहलती, पर छुट्टियो मे निर्मल आ जाएगा, मोनी भी शायद यही आये। तुम्हे मालूम हुआ, मोनी अबकी बी ए मे फर्स्ट रही। लेकिन हाँ, बताओ यह तुम्हे हुआ क्या है ?

स्त्री—होता क्या ? कुछ नही हुआ, तुम अगर मेरी तबीयत का एक खाका बनाओ तो लकीर वहाँ वहाँ बिजली तक पहुँच जाए।

पुरुष— [उत्साहित होकर] हाँ, लेकिन फिर यह बेताबी क्यो है ? देखो, आदमी के सामने बडी समस्या यह है कि वह अपनी बची-खुची शक्ति किस तरह काम मे ले आये। आदिम जगलीपन से लेकर आज तक की सभ्यता तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दु खी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस शक्ति को काम मे लाने के लिए। फिर दु ख या सुख तो इतनी ठोस चीजें है कि एक दिन तुम देखोगी कि यह शीशियो मे बिका करेंगी, शीशियो मे। मुझे इन टिसुए बहाने वालो से नफरत है

सख्त नफरत ! यह सिर्फ हारते ही नही हैं, यह तो अपनी हार के गीत गाते है, नारे लगाते हैं ।

स्त्री—अच्छा उठो, फिर तुम कार पर न पहुँचाओगे ?

पुरुष—[फिर घडी निकाला और उसे पोछता है] असम्भव ! तुम अब मिसेज निहाल का इन्तजार करो ।

[पुरुष जल्दी से भीतर चला जाता है, स्त्री वहीं बाहर की तरफ घूरती हुई बैठी रहती है । थोडी देर मे पुरुष भीतर से आता है, बगल मे पुराना फेल्ट हैट दाबे हाथ के छोटे डण्डे को रूमाल से पोंछ रहा है ।]

पुरुष—१०-१५ पर तुम स्टेशन आ जाओगी, वहाँ से मिलखीराम तक का रास्ता है ५ मिनट का, १०-२०, यानी १०-३० तक तुम यहाँ होगी, यानी १०-४० तक हम-तुम यही इसी टेवुल पर डिनर के लिए बैठे होगे ? मैं स्टेशन आ जाता, लेकिन मिस मित्तर—तुम व्यर्थ जलोगी । [भद्दी हँसी हँसता है, स्त्री पर जैसे इसका कोई असर नहीं होता] अच्छा चीरिओ !

[सीढियो पर तेजी से उतरता हुआ चला जाता है । स्त्री वैसे ही बैठी रहती है, फिर अनमनी भीतर उठकर चल देती है । स्टेज पर एकबारगी अन्धकार हो जाता है । बीच मे दो बार रोशनी होती है, जिसमे पूरे सीन में खाली मेज, और कुर्सियाँ दिखलाई देती हैं । घडी जिसमे पहले ८-२० बजा है फिर ६ ।]

दूसरा दृश्य

[एक मध्यवर्गीय क्लब का कमरा, तेज तीखी रोशनी हो रही है । मेजो पर ताश और भरी हुई एश-ट्रे बिखरी हैं, कुर्सियाँ भी अनेक चारो तरफ तितर-बितर पड़ी हैं । कोने मे एक बडी फ्रेंच विण्डो (खिड़की) के सामने सोफों पर तीन आदमी बैठे हैं । सीन में सिर्फ उनकी पीठें दिखायी दे रही हैं । पास ही एक कुर्सी पर सामने की छोटी मेज पर सुरुचि से कपड़े पहने एक युवक बराबर ताश फेंट रहा है । खिड़की के फ्रेम में तारो से खिला हुआ आकाश तसवीर की तरह जडा हुआ है । दीवार की

घडी ८-४५ बजा रही है। कमरे सब खामोश हैं, पर निस्तब्धता नहीं है।]

पहला—[आवाज वृद्ध-सी है] न मालूम मैं यह मनहूस ब्रिज का खेल क्यो खेलता हूँ ?

दूसरा—[जम्हाई लेता हुआ] क्या किया जाय, आओ कोई और झडा ऊँचा करें।

तीसरा—यह लोग आते भी तो नही। [कुर्सी पर के युवक की तरफ घूमकर] देखो जी तुम मिश्रित समाज की चर्चा चलाओ...

[दोनो आदमी घूमकर युवक की तरफ देखते हैं। तीनो आदमी मोटे, अधेड, कीमती कपडे पहने और अत्यन्त सन्तुष्ट हैं।]

युवक—[झेंपता-सा] मैं कैसे उठा सकता हूँ। हाँ, मेरी पत्नी आती तो मैं जरूर ऐसा करता। देखिए उन्हें...

[तीनों एकबारगी 'हूँ' करते हैं और फिर मुड के बैठ जाते हैं और खामोश हो जाते हैं। युवक फिर ताश फेंटने लगता है।]

पहला—[जेब से सिगरेट-केस निकालता है और फिर रख लेता है।] चलो भाई चलें, मुझे तो सुबह से ही काम है।

दूसरा—[मुडकर घडी देखते हुए] यह श्रीचन्द धुत्ता दे गया !

पहला—नही भाई, कही फँस गया होगा। उसके तो मकडी की तरह सौ आँखें है।

युवक—वह आएँगे जरूर, मेरी तो दावत कर गये हैं।

तीनो—[मुडकर] अच्छा ? और पट्ठे की पत्नी आज है नही !

[सब एक-दूसरे की ओर देखते हैं]

युवक—अच्छा ! मुझे पता होता तो मैं कभी प्रतीक्षा न करता।

पहला—इसे—श्रीचन्द को देखो, जब वह वकालत छोडकर व्यापार मे आ रहा था, मुझे इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी, पर देखो—आज वह एक कम्पनी का सर्वेसर्वा बन गया है। [हँसता है।]

दूसरा—[जम्हाई लेता और अगूठियो वाली अगुली से चुटकियाँ बजाता है।] मै तो भाई दिन-ब-दिन मानता जाता हूँ कि भाग्य भी कोई चीज है।

[युवक ताश रखकर एकाग्र हो, इन लोगों की बातें सुनता है।]

तीसरा—[उठ खडा होता है] आओ भाई, चलो। आइए मिस्टर सहाय, आपको कार पे छोड आऊँ घर तक…

पहला—बैठो न, श्रीचन्द आता ही होगा।

युवक—और आपसे भी तो उन्होने कार मे छोड़ आने के लिए कहा था।

तीसरा—[बैठते हुए] हूँ, हूँ, तब तो रुकना ही पडेगा।

[युवक कोई भी बात शुरू करने का इरादा करता है।]

युवक—आज मेरठ षड्यन्त्र का मामला शुरू हो गया।

तीनो—क्या? अच्छा!

[तीनो ऐसी बातों की तरफ उदासीनता दिखलाना चाहते हैं, पर कुछ असफल से हो रहे हैं।]

पहला—श्रीचन्द ने इनके बारे मे खूब कहा! [हँसता है। सब उसकी तरफ देखकर सुनना चाहते हैं।]

पहला—[कोट का कालर ठीक करते हुए] मेरे साथ कमिश्नर से मिलने गया, उन्होंने मेरठ की बात चलायी। आप छूटते ही हिन्दुस्तानी मे बोले—अरे साहब, इनको तो ऐसे ही छोड देना चाहिए, यह तो हम लोगो के खिलौने हैं।

[तीनों फैशनेबल हँसी हँसते हैं, युवक भी उसमे शामिल होता है।]

दूसरा—हर देश, हर सरकार के सामने समस्या सिर्फ यही है कि किस तरह उसके कर कम से कम किये जा सकते हैं। आप कर कम कर दीजिए, प्रजा अपने-आप सम्पन्न होगी।

पहला—हम लोगो-सा कोई बेसरोकार आदमी रूस जाकर देखे कि इन शरीफो ने वहाँ क्या कर दिखाया है कि दुनिया भर को रूस के सामने हेय समझते है।

तीसरा—यानी खुदा तक को!

[फिर तीनों ऊबी-सी हँसी हँसते हैं। बाहर कुछ खटका होता है। सब लोग बाहर की तरफ देखते हैं। पहले दृश्य का पुरुष संतोष और लापरवाही से आता है।]

पुरुष—[अपना हैट और डडा एक खाली मेज पर रखते हुए] तो तुम लोग मेरा इन्तजार कर रहे थे ! ब्रिज खत्म कर दिया ?

दूसरा—[कमरे के बीच मे आते हुए] आज सहाय फिर हार गये।

पुरुष—[हँसता हुआ] सहाय तुम बडे हरैले हो !

[अब सब अपनी जगहों से उठकर कमरे के बीच मे आ गये हैं।]

पहला—जीत तो सब तुम्हारे हिस्से मे पडी है !

पुरुष—अरे भाई, क्या जीत क्या हार ? यहाँ तो इसका कभी सपने मे भी खयाल नहीं करते। हम तो ईमानदारी से जीना चाहते हैं। मैं फिर कहता हूँ, जीवन एक कला है और सबसे बडी कला !

दूसरा—[जम्हाई लेते हुए] चलो भाई, बडी देर हो गयी। [सब घडी की तरफ देखते हैं, पुरुष फिर अपनी सोने की घडी निकालता है और उसे पोछता है।] चलो, घर तक छोडना पडेगा।

[तीनो भीतर जाकर अपना हैट लेते हैं, केवल युवक नंगे सिर है।]

पहला—यह चौकीदार न जाने कहाँ मर गया है !

दूसरा—कहता है ? क्या खूब ! क्या नयी पत्नी कर लाया है ? जरा सोचो, नयी पत्नी !

[सब जवानों की तरह हँसते हैं, सिर्फ युवक कुछ झेंपा-झेंपा-सा है और सबसे पीछे बाहर जाता है। बाहर बरामदे से दो या तीन बार आवाज आती है 'चौकीदार !' फिर मोटरो के स्टार्ट होने की और फिर खामोशी। स्टेज पर अँधेरा हो जाता है, पर बीच मे दो या तीन बार रोशनी होती है और किसानो का-सा बुझा हुआ चेहरा लिये एक चौकीदार मेज झाड़ता और जले हुए सिगरेट बीनता हुआ दिखायी देता है।]

तीसरा दृश्य

[पहले सीन के कमरे का बरामदा, लम्बा और साधारण से जरा ऊँचा। खम्भों के पास बड़े-बडे पाम खडे हैं, खम्भों पर बेलें भी फैली हैं, दरवाजे सब बन्द हैं, जिनके सामने तीन-चार बेमेल कुर्सियाँ पडी हुई हैं। सीढियों पर एक बडा झबरा कुत्ता लेटा है। दृश्य के शुरू मे कोई आदमी नहीं

दिखलायी देता है पर तत्काल ही गृहस्वामी और युवक जो क्लब से आ रहे हैं, सीढ़ियों पर चढते दिखाई देते हैं। कुत्ता सिर उठाकर धीमी जानकारी से गुर्राता है, फिर पूंछ हिलाता हुआ पीछे-पीछे बरामदे मे लेट जाता है। स्टेज पर कम से कम रोशनी है।]

पुरुष---[मेहनत से चढते हुए] तो यह कहिए ! [जेब टटोलता है] रुकिए '

[पुरुष एकबारगी सीढियो से उतरकर बँगले के पीछे की तरफ जाता है। युवक वहीं खडा होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखकर मुस्करा रहा है। शीघ्र वह फिर वापस आ जाता है और उतावली से जेब टटोलता है।]

पुरुष---अब यह नही पता, मेरी पत्नी चाभी मुझे दे गयी या कही रख गयी ? नौकर मैं कहता हूं कि मेरी जिन्दगी मे अगर कोई सुर बेसुरा है तो यह नौकर। छुट्टी-छुट्टी-छुट्टी, रोज-रोज इनको छुट्टी चाहिए, कम्बख्त यह नही जानते

[युवक सहसा एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। फिर पुरुष स्विच टटोलकर बत्ती जला लेता है और फिर दूसरी कुर्सी पर ठीक युवक के सामने बैठ जाता है।]

पुरुष---[एकबारगी हंसता हुआ] अगर स्विच कमरे के भीतर होता तो लुत्फ आ जाना !

युवक---खैर यहाँ भी तो आराम से बैठे हैं।

पुरुष---शायद ९-३० बजा है, [घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है] ९-२७, खैर, मेरी पत्नी यहाँ १०-३० तक आ जाएगी। खाना वह साथ ही लाएगी। [जम्हाई लेता है] और कहिए।

युवक---[उत्साह से] मुझे कोठी तो खैर मिल गयी·· ··

पुरुष---[जूते को फटफटाते हुए] खैर, कोठी-ओठी तो है, आपने यह नही बताया कि आपने शादी क्यो नही की ?

युवक---[कठिनता से] नही की---नही का कोई कारण तो है नही।

पुरुष---[मुस्कराता है] मैं सच-सच कहता हूं, मैं आप जवान आदमियो को देखकर कई बार बहुत खुश होता हूँ।

युवक—[जैसे इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं है] जी हाँ। [हँसता है]।

पुरुष—[सम्हलकर] नही। मैं आपसे दिल्लगी नही कर रहा हूँ। आप लोग हमसे एक पीढी आगे है, पर अगर आपसे हिसाब माँगा जाय तो आपके पास क्या है ? आप मुझे बताइए, आप लोगो ने दुनिया को क्या दिया ? मैं वैज्ञानिक आविष्कारो की बात नही करता, उसकी तो एक पूरी स्कीम है, जिसमे पीढियो और समाज का कोई दखल ही नही है, वह तो प्रकृति धीरे-धीरे अपने-आप पूरा कर रही है। मैं जानता हूँ, आप मेरे विचारो को दकियानूसी समझकर मन ही मन हँस रहे है, लेकिन भाईजान, आपने कौनसे तीर मारे हैं, आप बताइए !

युवक—जिक्र तो शादी का था ?

पुरुष—हाँ, हाँ, शादी को ही लीजिए, आप मानते है कि हर एक आदमी को जाति की जिन्दगी मे दाखिल होना जरूरी है। जैसा मैं प्राय कहता हूँ कि दुनिया साझे की दुकान है और हर एक बालिग आदमी का कर्तव्य है कि उसका साझेदार हो। अगर इस कोशिश मे आप अपनी जान नही खपा देते, तो आप मनुष्य कहलाने का कोई हक नहीं रखते। [उत्तेजित होकर] मैं कहता हूँ, सब पुस्तकें गलत है, सब झूठी हैं।

युवक—मैंने तो शादी नही की—नही की कि मैं शायद कभी भी औरत का दिमाग ·

पुरुष—भाईजान, शादी एक गहरी समस्या है, आप उसके साथ खिलवाड नही कर सकते। मैं पूछता हूँ, आप एक फैक्टरी मे तो हर तरह का विज्ञान, कानून, विशिष्ट ज्ञान लगाते हैं। फिर क्या कारण है कि जीवन को ऐसे परमात्मा के भरोसे छोड दिया जाए कि उसमें आदमी की सस्ती से सस्ती और निकम्मी से निकम्मी शक्तियाँ ही सिर्फ काम मे लायी जाएँ। आप कहते हैं, मैं औरत को समझ नही पाता। जनाब, यह सब कोरी बातें हैं। बातें समझने की जरूरत है ? मशीन की एक पुली दूसरी पुली को नापने, जोखने, समझने नही जाती। स्त्री-पुरुप तो जीवन की मशीन के दो पुरजे हैं—दो।

युवक—यह फैक्टरी और मशीन की भी एक ही रही !

पुरुष—नही साहब, आप मुझे देखिए, मेरी पहली पत्नी थी। कम्बख्त को हमेशा मुझसे शिकायत रही, लेकिन उसकी बीमारी में जब प्रतिक्षण उसके सिरहाने रहा तो मेरा नाम रटती हुई मरी। अब यह मेरी दूसरी पत्नी है। हमारे बच्चे नही, यानी इस पत्नी के। हम लोग क्लबो मे साथ-साथ नही जाते, हफ्ते मे एक बार सिनेमा देखते हैं, पहाड-जगल जाने का मेरे पास वक्त नही, पर हम लोग बेहद खुश हैं। कभी हम मे कोई भेद-भाव हुआ ही नही। मै कहना चाहता था कि दोनो ने अपनी-अपनी जगह को समझ लिया है और वहाँ हम लोग अडिग है। वह बीमार पडती है, मैं डाक्टर से घर नही भर देता, मैं बीमार पडता हूँ, वह रोती-धोती नही। मैं क्या कहूँ? मैं जानता हूँ, इस वक्त मेरी पत्नी स्टेशन के बुकस्टाल पर कौनसी किताब देख रही है। मैं जानता हूँ, वह स्टेशन पर गाडी से दस मिनट पहले पहुँच जाती है।

युवक—पर मान लीजिए, मशीन का एक पुरजा बिगड जाए।

पुरुष—[हँसता हुआ] तो पुरजा बदल डालिए, स्वय बदल जाइए। किताबें? मैं आपको बताऊँगा, किताबे क्या हैं। मैंने रूई के व्यापार पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। वही सब बातें लिखी जो लोग रोज सोचते थे और जिनकी चर्चा करते थे। नतीजा यह हुआ कि किताब की धूम मच गयी, पर उन्ही उसूलो को जिनकी मैंने वकालत की, काम मे लाने की बात मैं स्वप्न में भी नही सोचता।

[पुरुष सहसा यह आशा करके कि युवक कुछ कहेगा, चुप हो जाता है। युवक सिर झुकाए हुए खामोश है। कुत्ता इतना शोरगुल सुनकर पास आकर खडा हो गया है। कुछ देर के लिए खामोशी हो जाती है।]

युवक—[सिर उठाकर] फैक्टरी, पुरजा, वाकई यह खूब रही। [पुरुष कुछ कहने के लिए तैयार होता है, पर सहसा फाटक खटकता है और कुत्ता भौंकते हुए दौड़ता है। वह कुत्ते को बुलाता है और बरामदे के किनारे खड़े होकर जोर से पुकारता है। एक चपरासी हाथ मे बाइसिकिल थामे आता है और सलाम करके जेब मे से एक लिफाफा निकालकर देता है और फिर सलाम करके खड़ा हो जाता है।]

पुरुष—क्या है, तुम कौन हो? [लिफाफा लेकर अपनी घड़ी के चेन के

चाकू से खोलता है—रोशनी की तरफ जाता है ।] ऐं !

चपरासी—मैं निहाल साहब का ड्राइवर हूँ, मेम साहब ने कहलाया है, वह कल आएँगी !

पुरुष—[खत पढना छोडकर] कल आएँगी ? ऐं ! तुझे क्या मालूम ?

चपरासी—सब मेम साहब वहाँ रहेगे, मोटर वापस कर दी, मुझसे कहा

पुरुष—[टहलते हुए उतावली से] और खाना, मकान·· और कार मेरी मिलखीराम के पम्प पर खडी है !

चपरासी—हुजूर, आपका कुत्ता वडा पानीदार है । अंग्रेजी है ?

पुरुष—[हताश भाव से] आखिर, आखिर, हूँ···

युवक—[उठते हुए] आइए, मेरे होटल मे आइए, आपकी फैक्टरी मे तो आज स्ट्राइक हो गयी !

पुरुष—मैं कहता हूँ, मेरी कार मिलखीराम के पम्प पर खडी है।

[फिर खत बत्ती के नीचे ले जाकर पढता है ।]

[परदा गिरता है ।]

मैं और केवल मैं

भगवतीचरण वर्मा

पात्र

टॉमसन	:	अफसर
रामेश्वर, कृष्णचन्द्र,		
परमानन्द, वेनीशंकर,		
देवनारायण, श्यामलाल,		
खन्ना आदि		आफिस के कर्मचारी
मँहगू		चपरासी

[एक बडे दफ्तर का आराम का कमरा। सामने वाली दीवार से मिली हुई दो आलमारियाँ रखी हैं जिनमे किताबें हैं। दोनो आलमारियों के बीच एक खिडकी है। खिडकी के ऊपर एक घडी लगी है, जिसमे एक बज रहा है।

दाहिनी ओर एक दरवाजा है और उसके अगल-बगल दो खिडकियाँ हैं। बायीं ओर दो दरवाजे हैं। कमरे के बीचोबीच एक लम्बी मेज पडी है, जिसके चारो ओर कुर्सियाँ रखी हुई हैं। दो-एक आराम-कुर्सियाँ भी इधर-उधर पडी हैं।

रामेश्वर बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। उसका सर झुका हुआ है, मानो वह किसी गहरे विचार में मग्न हो।

कृष्णचन्द्र दरवाजे से कहता है—]

कृष्णचन्द्र—कहो जी रामेश्वर, क्या हाल है ?

[रामेश्वर कोई जवाब नहीं देता। कृष्णचन्द्र उसके पास आता है और कुर्सी पर बैठ जाता है। जेब से सिगरेट-केस निकालकर एक सिगरेट सुलगाता हुआ।]

कृष्णचन्द्र—क्यो जी, क्या बात है, आज बडे सुस्त दीख रहे हो ?

रामेश्वर—हाँ, बीवी की तबीयत बहुत ज्यादा गिर गयी, डाक्टरो ने जवाब दे दिया और आज सुबह से मेरी तबीयत भी कुछ भारी है।

कृष्णचन्द्र—अरे भाई, यह तो बुरी खबर सुनायी और सुना—खबा

साहब ने एक नया गुल खिलाया।

[रामेश्वर कोई जवाब नहीं देता—वह केवल कृष्णचन्द्र को गौर से देखता है।]

कृष्णचन्द्र—उस साले को निकलवा के न छोडा, तो मेरा नाम कृष्णचन्द्र नही! मिस्टर टॉमसन को बस मे क्या कर रखा है, अपने को लाट साहब समझने लगा है। लेकिन बच्चा को अभी यह पता नही कि कैसे आदमी से पाला पडा है।

रामेश्वर—हूँ! [गरदन नीची कर लेता है और एक ठडी साँस लेता है।]

[बेनीशकर का प्रवेश। दरवाजे से कहते हुए आते हैं—]

बेनीशकर—काम करते-करते तबीयत झक हुई जाती है। दिन-रात गधे की तरह जुतकर काम करता हूँ, लेकिन कोई पूछने वाला नही!

[बेनीशकर आकर कृष्णचन्द्र की बगल मे बैठ जाता है। रामेश्वर की ओर देखता है, फिर पूछता है—]

बेनीशकर—अरे रामेश्वर, आज चेहरा बडा उतरा हुआ है!

रामेश्वर—क्या बताऊँ, आज सुबह से तबीयत भारी है। कुछ भी अच्छा नही लग रहा है।

कृष्णचन्द्र—डाक्टर को क्यो नही दिखलाते?

रामेश्वर—हाँ, दो-एक दिन मे जाऊँगा। आज महीना भर से कुछ न कुछ शिकायत चली ही आती है।

[जिस समय रामेश्वर अपनी बात कहता है, कृष्णचन्द्र बेनीशकर की ओर देखता हुआ कहता है—]

कृष्णचन्द्र—कहो जी, खन्ना से कैसी निपटी?

बेनीशकर—अरे निपटी कैसी? कोई दबने वाला थोडे ही हूँ। कस के काम करता हूँ और दुनिया को ठेंगे पर मारता हूँ।

रामेश्वर—पूरा एक महीना—और बीबी को डाक्टरो ने जवाब दे दिया! और एक दूधपीता बच्चा!

[रामेश्वर की बात कोई नहीं सुनता।]

कृष्णचन्द्र—लेकिन साला है बदमाश! मैं कहता हूँ बेनीशकर, जब

तक यह आदमी यहाँ है तब तक हम लोग कोई सुख-चैन से नही रह सकते ।

बेनीशंकर—[मुस्कराता हुआ] बडी जल्दी टिकट कटने वाला है ।

रामेश्वर—[कृष्णचन्द्र से] भाई, तुम्हारे बहनोई तो बडे मशहूर डाक्टर हैं । जरा मैं उन्हे दिखलाना चाहता हूँ ।

कृष्णचन्द्र—हाँ-हाँ चलना । [बेनीशंकर की तरफ घूम पडता है] न जाने कब से सुन रहा हूं, लेकिन देखता हूँ, वैसा ही डटा हुआ है, टस-से मस नही होता । उस्ताद, अगर बीवी-बच्चो का ख्याल न होता तो फिर मैं बतलाता ।

[देवनारायण का प्रवेश । चुपचाप आकर रामेश्वर के पास बैठ जाता है । बेनीशंकर देवनारायण की ओर घूमता है ।]

बेनीशंकर—कहो जी देवनारायण, कोई नयी खबर ?

देवनारायण—जनाब, आज टॉमसन साहब ने मिस्टर खन्ना को बहुत डाँटा । मैं बैठा हुआ सुन रहा था, खन्ना साहब की घिग्घी बँध गयी, जवाब तक न देते बना ।

कृष्णचन्द्र—क्या कहा ? तो बात यहाँ तक पहुँच गयी—वह मारा ।

[रामेश्वर तीनों को एक बार गौर से देखता है । उसके बाद कृष्णचन्द्र से]

रामेश्वर—भाई कृष्णचन्द्र, तो आज शाम को चलोगे न ?

[कृष्णचन्द्र इस प्रश्न का जवाब न देकर रामेश्वर से कहता है]

कृष्णचन्द्र—क्यो जी रामेश्वर, टॉमसन साहब तुमसे तो बडे खुश हैं । तुम उन्हे क्यो नही सुझाते कि वह खन्ना को अलग करें । हम उनकी जगह तुम्हारा नाम पेश करेंगे ।

[रामेश्वर सिर्फ तीनो को देखकर एक ठंडी साँस लेता है ।]

देवनारायण—अरे, तुम इतने उदास क्यो हो ? रामेश्वर, तबीयत तो ठीक है ?

बेनीशंकर—नही, आज सुबह से इनकी तबीयत कुछ खराब है ।

देवनारायण—तो छुट्टी क्यो नही ले लेते ? म्याँ घर पर आराम करो ।कर ।

कृष्णचन्द्र—तो रामेश्वर सुना न ! इस वक्त मौका है और अगर अब चूके तो सब खत्म हो जायगा। जानते हो, खन्ना तुम्हे निकलवाने पर तुला हुआ है ?

रामेश्वर—होगा ! लेकिन मैं क्यो कोई ऐसा काम करूँ; दूसरे का अनिष्ट मुझसे न होगा। हाँ कृष्णचन्द्र, बतलाया नही, कल सुबह ले चलोगे, मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ ?

कृष्णचन्द्र—अरे यार आ जाना। [बेनीशंकर से] परमानन्द ही इस मौके का फायदा उठा सकता है।

बेनीशकर—हाँ यार, ठीक कहा। चलो उसके यहाँ चलें।

[कृष्णचन्द्र और बेनीशकर उठकर जाते हैं।]

रामेश्वर—[कृष्णचन्द्र से] अच्छा तो कृष्णचन्द्र, कल सुबह सात बजे मैं· ··

[कृष्णचन्द्र और बेनीशकर कमरे से बाहर चले जाते हैं।]

देवनारायण—[मुस्कराता हुआ] चले गये—बिना तुम्हारी बात सुने चले गये ! यह दुनिया काफी मजेदार है। है न ?

रामेश्वर—क्या कहा ?

देवनारायण—[दरवाजे की तरफ देखता हुआ] और दुनिया ठीक ही करती है। तुम्हारी बात को सुनने वाला कौन है ? फिर तुम्हारी बात दुनिया मे कोई सुने ही क्यो ?

रामेश्वर—देवनारारण ! हृदय की पीडा को प्रकट करना क्या कोई पाप है ?

देवनारायण—हाँ, है। तुममे और तुम्हारी पीडा मे किसी को कोई दिलचस्पी नही। जब तक दूसरे से उसके हित की बात कहते हो, वह तुमसे मिलकर प्रसन्न होगा, तुम्हारे साथ हँसे-बोलेगा और जहाँ तुम उससे अपने सुख-दु ख की बात करने लगते हो, उसका जी ऊब जाता है। तुम्हारे सुख से उसे कोई मतलब नही, तुम्हारे दु ख की उसे परवाह नही।

रामेश्वर—देवनारायण, तुम क्या कह रहे हो ? दुनिया मे मानवता नाम की भी कोई चीज है।

देवनारायण—मानवता ! हा-हा-हा ! जिसे तुम मानवता कहते हो

वह ढकोसला है, छल है। जो मानवता है, वह बडी कुरूप चीज है रामेश्वर ! मानवता के माने है एक-दूसरे को खा जाना, मानवता के माने हैं स्वय सुखी बनने के लिए दूसरे को दु खी बनाना। विजय—दूसरो पर विजय, दूसरो की गुलामी—यही मानवता है।

[रामेश्वर एक ठडी साँस लेकर देवनारायण की ओर देखता है।]

रामेश्वर—तुम जो कुछ कह रहे हो वह मेरी समझ मे नही आ रहा है। देवनारायण, जानते हो—घर मे पत्नी मरणासन्न पडी है और अबोध बच्चा बिना ममता के, प्यार के, धूल मे फिसल रहा है, और मैं निराश टूटा हुआ यहाँ बैठा हूँ। देवनारायण, क्या करूँ ?

देवनारायण—मैं क्या बताऊँ ? यह बला तुम्हारी है, तुम्ही भुगतो; और उफ मत करो। आखिर अपनी मुसीबतो का बयान करने से तुम्हे क्या मिल जायगा ? सहायता ? नही, दुनिया मे कोई नही है, जिसके ऊपर मुसीबतें न हो और जो सहायता न चाहता हो। सहानुभूति ? वह निरी मौखिक वस्तु है—बिलकुल धोखे की चीज है। सिवा इसके कि तुम लोगो के हृदय पर एक भार बनो—वसत ऋतु को तुषार की तरह झुलस दो, हँसी की दुनिया मे एक कर्कश चीख की तरह उठ पडो—तुम्हारा दूसरो से अपने दु ख को कहना कोई अर्थ नही रखता ! समझे ! अब मैं चला !

[देवनारायण उठकर चल देता है। रामेश्वर देवनारायण को जाते हुए देखता है—उसके माथे पर बल पड़ जाते हैं।]

रामेश्वर—हूँ, इतनी खुदी, इतनी उपेक्षा !

[कृष्णचन्द्र, बेनीशकर और परमानन्द का प्रवेश]

बेनीशकर—[रामेश्वर से] क्यो जी रामेश्वर, देवनारायण कहाँ गये ?

[रामेश्वर कोई उत्तर नहीं देता। सब लोग बैठ जाते हैं। परमानन्द रामेश्वर को गौर से देखता है।]

परमानन्द—अरे रामेश्वर, क्या मामला है ? तुम्हारी आँखो मे आँसू भरे हैं !

बेनीशंकर—अरे क्या लडकियो की तरह रो रहे हो ! वीर बनो !

कृष्णचन्द्र—देखा, परमानन्द तैयार है, इस खन्ना का समय आ गया, अब बच नही सकता । हाँ परमानन्द, मिस्टर टॉमसन अब लच से लौटकर आये होगे । यही वक्त ठीक होगा ।

परमानन्द—भाई रामेश्वर को क्यो नही राजी करते—रामेश्वर, अगर केवल एक दफे तुम मिस्टर टॉमसन से मिल लेते, केवल एक दफे, तो सब काम बन जाता !

रामेश्वर—कौन काम ?

परमानन्द—यही खन्ना वाला । आज ही सब फैसला हो जाता ।

रामेश्वर—मुझे क्षमा करो परमानन्द ! मैं खन्ना के खिलाफ कोई काम न करूँगा । खन्ना के खिलाफ ही क्यो—किसी के खिलाफ नही ।

बेनीशकर—हा जनाब ! खन्ना साहब की नजर मे चढना चाहते है । म्याँ यहाँ यह ढोग कब तक चलेगा ?

रामेश्वर—[कडी आवाज मे] क्या कहा ?

कृष्णचन्द्र—[बेनीशकर से] चलो जी, इनकी तबीयत ठीक नही है । हम लोग चलते है । हाँ, देवनारायण को साथ ले लेना चाहिए । वह है कहाँ ?

[सब लोग जाते हैं]

रामेश्वर—ये लोग दूसरे को मिटाने पर तुले हुए है, आखिर क्यो ?

[महँगू चपरासी का प्रवेश]

महँगू—सरकार, डाक मेज पर रखी है । [रामेश्वर को गौर से देखता है ।] अरे सरकार, आज बहुत उदास है, तबीयत तो ठीक है ?

रामेश्वर—नही महँगू, आज न जाने कैसा लग रहा है ।

महँगू—सरकार घर चलें । छुट्टी ले ले । मैं भी चल रहा हूँ । मालकिन की कैसी हालत है ?

रामेश्वर—क्या बतलाऊँ महँगू ! डाक्टर कहता है कि दो-एक दिन की मेहमान हैं ।

[महँगू की आँखो मे आँसू आ जाते हैं]

महँगू—सरकार, भगवान पर विश्वास रखे । जो कुछ भाग्य मे है, वह होगा । मोहन भी अभी बिलकुल बच्चा है !

[देवनारायण का प्रवेश। वह मुस्करा रहा है। वह आकर रामेश्वर की बगल मे बैठ जाता है।]

देवनारायण—सुना, परमानन्द को टॉमसन ने अभी-अभी डिसमिस कर दिया!

रामेश्वर—[चौंककर] क्या कहा? यह क्यो?

देवनारायण—परमानन्द ने जब खन्ना की शिकायत की तो साहब बजाय इसके कि खन्ना के खिलाफ कोई कार्रवाई करते, उन्होने परमानन्द को ही डिसमिस कर दिया।

[रामेश्वर उठ खडे होते हैं]

रामेश्वर—मैं अभी टॉमसन के पास जाता हूँ। परमानन्द के छह बच्चे है, बुढिया माँ है, बीवी है, ये सब भूखो मरेगे।

[रामेश्वर दो कदम बढता है, उसी समय देवनारायण उसका हाथ पकड लेता है।]

देवनारायण—बेवकूफी मत करो। क्यो अपने पैरो मे कुल्हाडी मार रहे हो? खन्ना के खिलाफ कोई बात नही सुनी जायगी, यह हम सब जानते है। परमानन्द ने वहाँ जाकर गलती की और अपनी गलती का नतीजा वह भोगेगा।

[श्यामलाल का प्रवेश]

रामेश्वर—[श्यामलाल को देखकर] अरे श्यामलाल!

श्यामलाल—आपको ढूँढ रहा था। आ

रामेश्वर—क्या हुआ, कहो घर मे तो सब ठीक है?

श्यामलाल—मो·· मोहन दो-मजिले से गिर पडा और गिरते ही उसके प्राण निकल गये। बहूजी ने जब सुना, तब वे जोर लगाकर उठी—और वैसे ही लुढक पडी। चलिए।

[रामेश्वर कुरसी पर गिर पडता है।]

रामेश्वर—हूँ! तो सब समाप्त हो गया?

[शून्य दृष्टि से अपने चारो ओर देखता है।]

[मिस्टर टॉमसन के साथ मिस्टर खन्ना का प्रवेश।]

खन्ना—मिस्टर रामेश्वर! मैंने आपको फाइल दी थी, उस पर अभी

तक कोई कार्रवाई नहीं की। क्यो ?

टॉमसन—मिस्टर रामेश्वर, मिस्टर खन्ना ने आपकी कई शिकायतें की हैं। मैं आपसे आशा नही करता कि आप इतनी लापरवाही करेंगे। देखिए, उस फाइल पर कार्रवाई करके मेरे पास भेज दीजिए।

[खन्ना और टॉमसन चलने लगते हैं—रामेश्वर खडा हो जाता है।]

रामेश्वर—मिस्टर टॉमसन! एक वात मैं पूछना चाहता हूँ।

[टॉमसन और खन्ना रुक जाते हैं—दोनो आश्चर्य से रामेश्वर को देखते हैं।]

रामेश्वर—आपने परमानन्द को डिसमिस किया ?

खन्ना—तुम पूछने वाले कौन हो ?

रामेश्वर—[खन्ना से] तुम चुप रहो! मैं तुमसे नही पूछ रहा हूँ। [टॉमसन से] आप जानते है कि उसकी लम्बी गृहस्थी है और वही अकेला कमाने वाला है। उसकी वर्खास्तगी के माने हैं दस प्राणियो का भूखो मरना।

टॉमसन—मुझे दुख है रामेश्वर, लेकिन मुझे खन्ना और परमानन्द के बीच मे एक को रखना था और एक को अलग करना था।

रामेश्वर—और आपने एक शैतान को अपने साथ रखा, एक मनुष्य को अलग कर दिया।

खन्ना—और अब मिस्टर टॉमसन को मेरे और तुम्हारे बीच मे एक को अलग करना पडेगा और एक को रखना पडेगा। जो आदमी एक अफसर का अपमान करता है, वह दूसरे का भी अपमान कर सकता है, मिस्टर टॉमसन यह अच्छी तरह जानते हैं।

टॉमसन—मिस्टर रामेश्वर, मुझे दुख है कि आप आज इस तरह गैरजिम्मेदारी की वातें कर रहे हैं। कर्तव्य का स्थान भावना से ऊपर है।

[रामेश्वर वढकर खन्ना का गला पकड लेता है और दवाने लगता है।]

रामेश्वर—कर्तव्य का स्थान भावना से ऊपर है—नही कर्तव्य ही सवसे ऊँची भावना है! खन्ना, तुम वचोगे नही!

[खन्ना आँखें फाड देता है। सव लोग रामेश्वर को छुडाते हैं, लेकिन रामेश्वर मे अमानुषिक वल आ गया है। धीरे-धीरे रामेश्वर खन्ना का

गला छोड देता है—खन्ना निर्जीव जमीन पर गिर पड़ता है।]

टॉमसन—यह क्या! यह क्या!

रामेश्वर—मिस्टर टॉमसन! अभी-अभी मेरा लडका और मेरी पत्नी मर चुके हैं। [श्यामलाल की ओर इशारा करता हुआ] इनसे पूछ लीजिए। और खन्ना—यह मनुष्य जानता था, आज सुबह ही मैंने इससे कहा था। अपनी खुदी मे भूला हुआ आदमी! [रामेश्वर कुरसी पर बैठ जाता है] दूसरो को सताने वाला, नष्ट करने वाला [कुछ रुककर] हां, अब आप पुलिस बुला सकते है।

[रामेश्वर का सिर लुढक जाता है—सब लोग दौड़ते हैं। देवनारायण रामेश्वर की नब्ज देखता हे और सिर हिलाता है।]

विभाजन

विष्णु प्रभाकर

पात्र

प्रभुदयाल		वडा भाई
देवराज	:	छोटा भाई
भगवती		प्रभुदयाल की पत्नी, देवराज की भाभी
शारदा		देवराज की पत्नी
महेश, रमेश	.	प्रभुदयाल के लडके
नीला		प्रभुदयाल की लडकी

पहला दृश्य

समय—रात के ९ बजे।

स्थान—एक साधारण कस्बा।

[कस्बे के मुहल्ले मे एक घर का आँगन। रात काफी अँधेरी है। आँगन के पार एक कमरे मे लालटेन टिमटिमा रही हे। उसी का प्रकाश आँगन मे फैला है। उसी प्रकाश मे एक स्त्री चूल्हे के आगे बैठी है। यह भगवती है, साधारण कपडे पहने है। सरदी है, इसीलिए आग ताप रही है। चूल्हे पर दूध पक रहा है कि अन्दर से बालक के रोने की आवाज आती है। उठकर अन्दर आती है। क्षण भर सन्नाटा छाया रहता है, फिर धीरे-धीरे एक मीठा स्वर वहाँ आकर फैलता है। भगवती लोरी सुनाकर बच्चे को सुलाती है।]

भगवती—परियो के देश से आ जा री निंदिया।
नीला को आकर सुला जा री निंदिया॥
ऊपर है तारो का ससार, नीचे मेरे मन का प्यार,
चन्दा मामा ऊपर तेरे, नीचे प्राण सग हैं मेरे।
पलको मे आके समा जा री निंदिया।
नीला को आके सुला जा री निंदिया॥

[तभी दरवाजे पर खटखट होती है, कोई पुकारता है।]

आवाज—भाभी भाभी !

भगवती—कौन है ?

आवाज—मैं देवराज।

[भगवती शीघ्रता से उठती है और किवाड खोल देती है।]

भगवती—देवराज ! क्यो ? रात को कैसे आया ?

[मुस्कराती है।]

देवराज—[हँसता है] चौंकती हो भाभी ! अपने घर के लिए भी रात या दिन का सवाल होता है ?

भगवती—घर तो तेरा ही है परन्तु फिर भी कोई काम है क्या ?

देवराज—हाँ, भइया से काम था।

भगवती—वे तो दस वजे से पहले कभी मन्दिर से नही लौटते।

देवराज—तव

भगवती—कोई जरूरी काम है ? मैं कह दूंगी !

देवराज—हाँ ! तुम ही दे देना ! रुपये लाया था !

भगवती—[अचरज से] कैसे रुपये है ? क्या उन्होने माँगे थे ?

देवराज—नही तो।

भगवती—तो

देवराज—भाभी ! कल पहली तारीख है। महेश को रुपये भेजने है, वही लाया हूँ।

भगवती—महेश को तो रुपये मैं भेज चुकी। तू कैसे लाया है ?-

देवराज—[अचरज से] भेज चुकी ! परन्तु आधे रुपये तो मैं देता हूँ।

भगवती—ओ ! यह वात है। देवराज ! अव तुम्हारे देने की वात नही उठती। अव हम अलग-अलग हैं।

देवराज—[अप्रतिभ होकर] भाभी ! तुम क्या कह रही हो ? दुकानें तो तब भी दो थी और अव भी दो हैं। घर बँट जाने मे क्या हम भाई-भाई भी नही रहे ?

भगवती—मैं कव कहती हूँ भइया ! पर जो वात है, वह कैसे भुलायी जा सकती है। जव हम साझे मे थे तो दुनिया की दृष्टि मे एक थे। तू दो सौ कमाता था और वे दस, परन्तु मेरा दोनो की कमाई पर एकसा

अधिकार था। अब अलग-अलग ह, तेरे दो सौ रुपयो पर मेरा कोई अधिकार नही है। यह व्यवहार की सीधी वात है। नाते-रिश्ते का इससे कोई सम्बन्ध नही है।

देवराज—परन्तु भाभी! मेरी आमदनी पर तुम्हारा अधिकार नही है, महेश का तो है। मैं उसी को देता हूँ, तुम्हे नही

भगवती—देवराज! जब तक हम हैं उसके पालन-पोषण का कर्तव्य हमारा है। जब हम नही रहेगे, तब तेरे देने की बात उठ सकती है। [गर्व से] व्यर्थ ही झुकना क्या ठीक है? जब बहुत थे तब बहुत खर्च करके सिर ऊँचा रखा। अब कम हैं तो हम किसी से माँगेगे नही। ना, तेरी भाभी जीते-जी कभी ऐसा नही करेगी। देख, फिर कहती हूँ तू देगा तो लौटाने की बात उठेगी। उतनी शक्ति हम मे नही है। न जाने कल को क्या हो, भाई-भाई मे जो मोहब्बत है वह भी खोनी पडे। उस समय दुनिया हँसेगी। इसीलिए कहती हूँ, तू लेने-देने की बात मत कर। और सुन, जब हम नहीं रहेंगे तब तू ही तो करेगा। [क्षण भर रुककर] जा, घर पर बहू अकेली होगी। कितना अँधेरा है बाहर।

देवराज—भाभी!

भगवती—हाँ भइया!

देवराज—तो जाऊँ?

भगवती—और कैसे कहूँ?

देवराज—मैंने यह नही सोचा था, भाभी!

भगवती—देव! तू जानता हे जब मै इस घर मे आयी थी, तो तू कितना बडा था? सात वर्ष का होगा। मैंने ही पाल-पोसकर इतना बडा किया है। उस प्रेम को कोई मिटा सकता है? उसी प्रेम को अक्षुण्ण रखने को कहती हूँ, देवराज! तू भाभी के साथ व्यवहार के पचडे मे न पड।

देवराज—भाभी-ई-ई-ई

भगवती—जा, रात बढी आ रही है। इतने बडे घर मे बहू अकेली होगी।

[देवराज की आँखें झर-झर बहती है। वह बेबस-सा उठता है और

विना वोले एकदम वाहर निकल जाता है। भगवती किवाड़ वन्द कर लेती है। उसकी आँखो मे आँसू छलक आये हैं, पर चेहरे पर अद्‌भुत मुस्कराहट है, जो धीरे-धीरे हँसी मे पलट जाती है।]

भगवती—[हँसती-हँसती] पगला! दो नाव मे पैर रखना चाहता है।

[भगवती फिर उसी तरह चूल्हे के पास आकर बैठ जाती है। कोयले बुझ चले हैं, उन्हें दहकाने लगती है। फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

समय—लगभग १० वजे रात।

स्थान—वाजार मे ठाकुरजी का मन्दिर।

[मन्दिर मे ठाकुरजी की सजी प्रतिमा के सामने पूजा हो रही है। कुछ भक्त-जन घण्टे-घड़ियाल वजा रहे हैं। कुछ दोनों हाथ जोड़े ध्यानावस्था मे खडे हैं। मूर्ति के ठीक सामने एक थाल मे कुछ पैसे पड़े हैं। दूसरी तरफ चौकी पर एक तश्तरी मे मिष्ठान्न और एक लोटे मे चरणामृत है। पुजारी जी जोर-जोर से पुकार रहे हैं।]

पुजारी—[ध्यान लगाये हुए।]

ओ३म! ओ३म्! ओ३म्! ओ३म्!

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।

त्वमेव वन्धुश्च सखा त्वमेव॥

त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव।

त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

ओ३म् हरि, ओ३म् हरि, ओ३म् हरि, ओ३म् हरि।

[कुछ भक्त जाते हैं, कुछ और आते हैं। जाने वाले पुजारी को प्रणाम कर चुपचाप हाथ फैला देते हैं। पुजारी एक चम्मच से चरणामृत तथा मिष्ठान्न का एक टुकड़ा उनके फैले हुए हाथ पर रख देता है। श्रद्धा से झुककर वे चले जाते हैं। कहीं दूर दस का घण्टा बजता है। पुजारी उठता

है। आरती उठाकर घण्टी हिलाता है। कुछ क्षण तक सब मिलकर गाते हैं, 'आरती श्री ठाकुरजी की' और फिर सब स्वर एकदम समाप्त हो जाते हैं। पुजारी भक्तों को अन्तिम प्रसाद देने के लिए आगे बढता है। इसी समय देवराज वहाँ आता है, सबको देखता है।]

देवराज—पुजारीजी, पालागन।

पुजारी—जीते रहो, सुखी रहो देवराज! कैसे आये इस वक्त?

देवराज—भइया को देख रहा था। गये क्या?

पुजारी—वे अभी गये है। कहते थे आज जी कुछ उदास हैं। सत्सग मे नही बैठे। हाँ, पूजा समाप्त कर गये हैं। नियम के बडे पक्के है। [हंसता है]

देवराज—हाँ, पुजारजी! भइया ने जीवन मे एक ही बात सीखी है और वह है नियम! नियम से परे उनके लिए कुछ भी नही है।

पुजारी—देवराज! मैं कहता हूँ, प्रभुदयाल क्या इस दुनिया के आदमी हैं! नही, वह तो देवता हैं। परन्तु [आहिस्ते से] जब मे उस घर मे आये हैं उदास रहते है ··।

देवराज—[चौंककर] हाँ · [सम्हलकर] इस बार जब कथा हुई थी, आप नही आये थे।

पुजारी—[नम्र स्वर मे] हाँ भइया, इस बार मैं नही आ सका था। कश्मीर चला गया था। बडा दु ख रहा प्रभुदयाल के घर कथा हो और मैं न रहूँ।

देवराज—लेकिन! पुजारीजी, आप हो या न हो, हम आपको भुला नही सकते। आपके दक्षिणा के बीस रुपये मैं ले आया हूँ। [देता है]

पुजारी—[बेहद नम्र होकर] है, है, है,! देवराज! मैं कहता हूँ तुम दोनो भाई दिव्य हो। तुम्हारे ऐसे जन विरले है। परमात्मा तुम्हे सदा सुखी रखें। आनन्द ·,

देवराज—[मुस्कराता है] और पुजारीजी एक बात न भूलिएगा।

पुजारी—[मुस्कराता है] क्या?

देवराज—इस बार भगवती देवी का जाप करना है।

पुजारी—जरूर, जरूर, यह तो मैं हमेशा करता हूँ।

देवराज—और यजमान भइया होगे ।

पुजारी—जानता हूँ देवराज ! वे बडे हैं ।

देवराज—जी ! अच्छा पालागन महाराज !

पुजारी—युग-युग जीओ, सुखी रहो !

[देवराज बाहर जाता है । पुजारी फिर प्रसाद बाँटने लगता है, भक्तजन आपस मे बातें करते हैं ।]

एक आदमी—देखा इस देवराज को ! अब जरा दो पैसे कमाने लायक हुआ तो भइया को अलग कर दिया !

दूसरा आदमी—हाँ भइया ! प्रभुदयाल की बहू ने पेट का समझकर पाला था । माँ तो जरा-से को छोडकर मर गयी थी । उसके जी पर क्या बीतती होगी ?

तीसरा आदमी—तुम नही जानते, बडी तेज औरत है । देवराज ने केवल एक बार कहा था, भाभी इस रोज-रोज की खट-खट से तो अलग चूल्हा बना लेना अच्छा है । बस, उसने दो चूल्हे करके दम लिया । प्रभुदयाल तो सीधा-सादा आदमी है ।

चौथा आदमी—अजी घर-घर यही मिट्टी के चूल्हे हैं । बँटना क्या बुरा हुआ । प्रभुदयाल का खर्च भी तो ज्यादा है ।

पहला आदमी—अजी खर्च ज्यादा है तो क्या प्रेम को भुलाया जा सकता है । आखिर उन्होंने ही तो इस योग्य बनाया है । बेटे भी इस तरह करने लगे तो—

दूसरा आदमी—भइया ! बेटे और भाई में विशेष अन्तर होता है ।

तीसरा आदमी—अजी ! भाई और बेटे मे कोई अन्तर नही है । अन्तर तो ये सब औरतें करवा देती हैं । बेटे की बहू आने पर घर मे रोज तूफान मचा रहता है और सब तो भइया के विवाह होते ही अलग हो जाते हैं ।

[सब हँस पडते हैं और इसी तरह बातें करते-करते बाहर चले जाते है । पुजारी भी तब तक सब दीप बुझा चुकता है । केवल एक दीया ठाकुर जी के पास मन्द-मन्द प्रकाश फेंकता है । पुजारी ठाकुरजी को प्रणाम

करता है और किवाड वन्द कर देता है। बाहर जाता है। अन्धकार के साथ-साथ गहरी निस्तब्धता वहाँ छा जाती है।]

[पट परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

समय—प्रात ८-६ बजे।

स्थान—प्रभुदयाल का घर।

[प्रभुदयाल पूजा करके दूकान पर जाने का बन्दोस्त कर रहे हैं। छोटा लडका रमेश आँगन मे बैठा तकली कात रहा है। नीला चौखट पर बैठी रोटी खा रही है। आँगन मे सफाई है। कमरा भी साफ नजर आ रहा है। चूल्हे से धुआँ उठता है और ऊपर आसमान में काले धूँधले बादल वन रहे हैं। वातावरण मे एक गुंज-सी भरी है। तभी बाहर से भगवती हाथ मे एक चिट्ठी लिये आती है और प्रभुदयाल के पास खड़ी हो जाती है।]

प्रभुदयाल—[देखकर] किसकी चिट्ठी है ?

भगवती—महेश की।

प्रभुदयाल—[मुस्कराकर] क्या लिखा है उसने ?

भगवती—वही लिखा है जो हमेशा लिखता है, कैसे भी हो रुपये का प्रबन्ध कर ही दे। अपने दर्जे मे अव्वल आया है।

प्रभुदयाल—[जाकेट के बटन लगाते-लगाते] अव्वल तो हमेशा ही आता है, परन्तु रुडकी जाने के लिए कम से कम १००) महीने का खर्च है।

भगवती—वह तो मैं जानती हूं, परन्तु रुपये नही मिलेंगे, इसी कारण लडके का भविष्य नही बिगाडा जा सकता।

[क्षणिक सन्नाटा]

भगवती—मैं तो समझती हूँ कि रात को जो कुछ मैने कहा था, वह ठीक रहेगा।

प्रभुदयाल—[सोचता है] तुम तो बस

भगवती—जानती हूँ दुकान गिरवी रखने की बात से आपको दुःख होता है, अगर मेरे पास इतने गहने होते, जिनसे उसका काम चल जाता तो मैं कभी यह बात नही कहती। १०००) रुपये से एक साल का खर्च भी नही चलेगा। बात तीन साल की है।

प्रभुदयाल—कुछ भी हो, मैं बाप-दादा की सम्पत्ति नहीं बेच सकता। गिरवी रखकर छुडाने की आशा नही रहती और फिर दुकान की वजह से साख बँधी है। एक बार गयी तो पेट भरना मुश्किल हो जाएगा।

भगवती—यह सब मैं जानती हूँ, परन्तु पूछती हूँ, दुकान की ममता क्या लडके की ममता से ज्यादा है?

[प्रभुदयाल बोलते नहीं, केवल शून्य मे ताकते हैं।]

भगवती—[सहसा याद करके] एक बात कहूँ?

प्रभुदयाल—क्या?

भगवती—मैं देवराज को बुलाती हूँ।

प्रभुदयाल—क्यो? क्या उससे रुपया माँगोगी?

भगवती—सुनो तो। आप उससे कहना कि वह आपकी दुकान गिरवी रख ले।

प्रभुदयाल—[सोचकर] वह रख ले!

भगवती—जी हाँ। इस तरह बाप-दादे की सम्पत्ति बेचनी भी नही पडेगी और काम भी बन जाएगा।

प्रभुदयाल—बात तो तुम्हारी ठीक है।

भगवती—तो बुला लूँ उसे? फिर तो वह तो दिसावर चला जाएगा।

प्रभुदयाल—बुला लो।

भगवती—[पुकारती है] रमेश! ओ रमेश! भइया, जा तो अपने चाचा को बुला ला। कहना भाभी बुला रही है।

रमेश—[दूर से] जाता हूँ, माँजी।

[कुछ क्षण वहाँ सन्नाटा रहता है। भगवती चूल्हे को तेज करती है कि रमेश और देवराज वहाँ आते हैं।]

भगवती—अरे क्या इधर ही आ रहा था?

रमेश—हाँ, माँजी, चाचा तो यही आ रहे थे।

देवराज—क्या बात है भाभी ? सुना है महेश रुडकी जाना चाहता है। बडी सुन्दर बात है।

भगवती—हाँ, कई दिन से यही बात सोच रहे हैं।

देवराज—कुल तीन साल की बात है। भगवान की कृपा से हमारे कुटुम्ब मे भी एक अफसर बनेगा। महेश है भी होशियार।

भगवती—यह तो सब ठीक है देवराज ! पर बात रुपयो पर आकर अटक गयी है।

देवराज—क्या सोचा फिर ?

प्रभुदयाल—[खाँसते-खाँसते] उसी के लिए तो बुलाया है।

देवराज—जी !

प्रभुदयाल—[एकदम] मै कहता हू कि तू मेरी दुकान ले ले।

देवराज—[चौंककर] मैं

प्रभुदयाल—हाँ, तीन हजार रुपये की जरूरत है।

देवराज—भइया !

प्रभुदयाल—मैं धीरे-धीरे सब चुकता कर दूंगा।

देवराज—[दबता स्वर] लेकिन भइया, आप मुझसे कह रहे है ?

प्रभुदयाल—हाँ

देवराज—आपकी दुकान मैं गिरवी रख लूं ?

प्रभुदयाल—हाँ

भगवती—इसमे बात ही क्या है। तेरे भइया नही चाहते कि दुकान किसी दूसरे के पास रहे। अगर छुडा भी नही सके तो अपने ही घर रहेगी।

देवराज—[साँस लेकर] ठीक कहती हो भाभी ! व्यवहार-कुशल आदमी दूर की बात सोचता है परन्तु बहुधा वह अपने अन्दर की मनुष्यता भूल जाता है।

भगवती—[चौंकती है] क्या कहता है तू ?

देवराज—व्यवहार की बात है भाभी ! सोचूंगा ! [हँसता है]

भगवती—[बरबस हँसती है] हाँ, हाँ, सोच लेना और जवाब दे

देना। आखिर महेश के लिए कुछ करना ही होगा। कल को दुनिया कहेगी माँ-बाप ने पैतृक सम्पत्ति के मोह मे पडकर सन्तान का गला घोट दिया। वह उचित नही होगा।

देवराज—नही भाभी ! उसे जरूर रुडकी भेजो। [उठता है] अच्छा मैं जाता हूँ, साँझ को आऊँगा।

[देवराज जाता है। प्रभुदयाल भी अनमने से उठते हैं।]

भगवती—डरती हूँ मना न कर दे।

प्रभुदयाल—जो कुछ होना है वह तो होगा ही।

[वे भी लकडी उठाकर बाहर चले जाते हैं। भगवती अकेली आँगन मे बैठी सोचती है। आँखो मे आँसू भर आते हैं। उन्हे पोंछती नहीं]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

समय—दोपहर के लगभग ११॥ बजे।

स्थान—देवराज का घर।

[देवराज का घर काफी सुन्दर और सजा हुआ है परन्तु अब खाली नजर आता है। केवल आँगन के पास दालान मे सामान अस्त-व्यस्त अवस्था मे पडा है। कुछ बक्स हैं, होलडाल है, सूटकेस है। देवराज की पत्नी शारदा अन्दर से ला-लाकर सामान वहाँ रख रही है। रसोईघर से धुआँ आ रहा है। बाहर से स्त्रियाँ आती है। दो-चार मिनट बात करके चली जाती हैं।]

स्त्री—[आकर] बहू !

शारदा—जी।

स्त्री—कब तक लौटेगी ?

शारदा—जी, कह नही सकती। कई वर्ष का काम है। बीच-बीच मे शायद कुछ दिन के लिए आ सकूँ।

स्त्री—हाँ बहू, जो परदेश मे कमाने जाते हैं घर उन्हे भूल जाता है।

[उमी समय देवराज वहाँ आता है, स्त्रियाँ बाहर जाती हैं।]

देवराज—शारदा! अभी निवटी नही! भाभी के पास भी चलना है।

शारदा—[उठकर पास आती है] अभी चलूंगी, पर आपने कुछ सुना भी है।

देवराज—क्या?

शारदा—जीजी ने अपना जेवर वेच दिया।

देवराज—जानता हूं शारदा! भाभी महेश को रुडकी कालेज भेजना चाहती हैं। जेवर इसी दिन के लिए वनता है।

शारदा—और आपके भाई साहव ने दुकान उठाने का निश्चय कर लिया है।

देवराज—[चौंकता है] यह किसने कहा तुमसे?

शारदा—अभी-अभी रामकिशोर की बहू कह रही थी। उन्ही के साझे मे वे चमडे की दुकान खोलेंगे।

देवराज—अच्छा! [अचरज]

शारदा—और रूई का व्यापार भी करेंगे!

देवराज—[हतप्रभ-सा] भइया रूई का व्यापार करेंगे?

शारदा—जी हाँ अव वे खव रुपया कमाना चाहते हैं।

देवराज—[म्लान होता है] सचमुच?

शारदा—और नही तो ये सब बातें क्या माने रखती हैं?

देवराज—शायद तुम ठीक कहती हो। उन्हे रुपयो की जरूरत है। भाभी ने मुझसे भी कहा था

शारदा—[अचरज से क्या कहा था?

देवराज—मैं भइया की दुकान गिरवी रखकर उन्हे ३०००) दे दूं।

शारदा—[उत्सुकता से] फिर

देवराज—फिर क्या, मैंने मना कर दिया।

शारदा—[सन्तोष की साँस लेकर]—आपने ठीक किया। सगे-सम्वन्धियो से लेन-देन करके कौन आफत मोल ले।

देवराज—लेकिन भइया तो सीधे-सादे हैं, इतना काम कैसे करेंगे?

शारदा—[मुस्कराती है] घर मे जीजी तो हैं। वे सब कुछ समझती हैं। और फिर महेश की वात है। उस पर उन्हे कितनी आशाएँ हैं।

देवराज—[एकदम उदास होता है] हाँ, शारदा । तुम ठीक कहती हो । आशा सब कुछ करा लेती

[तभी रमेश का तेज स्वर पास आता है ।]

रमेश—चाची, चाची-ई-ई•••

शारदा—क्या है रमेश ?

[रमेश का प्रवेश]

रमेश—चाची, तुम जा रही हो । मैं भी चलूंगा ।

शारदा—[हँसकर] चलेगा ?

रमेश—हाँ ।

शारदा—जीजी से पूछा तूने ?

रमेश—पूछा था चाची ! भाभी ने कहा है, जी करता है तो चला जा ।

शारदा—[देवराज से] इसे ले चलो जी । अकेले जी भी नही लगेगा और फिर •

देवराज—तो ले चलो । लेकिन मुझे एक काम याद आ गया । जरा बाजार हो आऊँ । भाभी के पास सन्ध्या को चलेगे ।

रमेश—चाचीजी, भाभी ने कहा है, शाम को खाना वही खाना ।

शारदा—अच्छा रे, पर अब तू मेरा काम करना, चल ।

[मुस्कराती-मुस्कराती उसे पकडकर अन्दर ले जाती है । देवराज एक बार उन्हे देखकर हँसता है, फिर उदास होकर बाहर चला जाता है । दूर कहीं घण्टा बजता है ।]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

समय—सध्याकाल ।

स्थान—देवराज । घर ।

[शारदा ने सब समान सम्हाल लिया है । नौकर बिस्तर बाँधने मे व्यस्त है और वह ट्रंक, सूटकेस गिन रही है । स्त्रियाँ अब भी आ-जा रही है । शारदा काफी थकी जान पडती है । उसका सुन्दर चेहरा उतर रहा

हैं। बोलती-बोलती रो उठती है। बार-बार आतुरता से वाहर झाँक लेती हैं। सहसा बिजली का प्रकाश चमक उठता है। तभी देवराज मन्द-मन्द गति से वहाँ आता है। हाथ मे एक कागज लिये है। शारदा शीघ्रता से आगे बढ़ आती है।]

शारदा—वडी देर कर दी आपने, कहाँ चले गये थे ? और आपके हाथ में क्या चीज है ?

देवराज—[गम्भीरता से] यह भइया की दुकान का कागज हे।

शारदा—[काँपकर] क्या ''आ'''आ ?

देवराज—हाँ शारदा ! मैंने भइया की दुकान गिरवी रखकर उन्हे तीन हजार रुपये दे दिये है।

[कागज फाडने लगता है]

शारदा—[हतप्रभ होकर] लेकिन इसे फाड क्यो रहे हैं ?

देवराज—[अनसुनी करके] आग जलायी है शारदा ?

शारदा—आग ''! क्यो ?

देवराज—वेशक आग ! शारदा ! सोचता हूँ कल को पागल न हो जाऊँ। इसलिए इस कागज को समूल नष्ट कर देना चाहता हूँ।

शारदा—क्या कह रहे हैं आप ? तीन हजार रुपये क्या इसी तरह फेक दिये जाएँगे ?

देवराज—नही शारदा ! भाभी को मैं जानता हूँ। उन्ही की गोद मे पलकर इतना वडा हुआ हूँ।

शारदा—लेकिन''

देवराज—[बीच ही मे] और सुनो ! होंगे तो भइया रुपये रखेंगे नहीं, यह भी जान लो कि वे देने आएँगे तो मैं लौटाऊँगा भी नही। व्याज तक ले लूँगा। व्यवहार की वात है।

शारदा—[चिन्तित होकर] मैं नही जानती, तुम्हे क्या होता जा रहा है।

देवराज—[हँसता हैं] यह तो मैं भी नही जानता। भाभी से जव मैंने कहा कि दुकान गिरवी रखकर रुपये दे दूँगा तो वे रो पडी। सच कहता हूँ शारदा, जीवन मे पहली बार आज मैंने भाभी को रोते देखा है।

मैं हँसता हूँ । तुम गुस्सा करती हो, करो । परन्तु मैंने भाभी को आज रोते देख लिया

[कागज को जल्दी फाडकर रसोईघर की आग मे डाल देता है । उसमे आग बुझ चली है, कागज गिरने पर धुआँ उठता है ।]

देवराज—सुनो शारदा ! रोने-हँसने का यह सीन यही समाप्त होता है । प्रार्थना करता हूँ दुनिया इस समाप्ति को न जाने । और देखो, मैं अब भाभी के पास नही जाऊँगा । तुम जा सकती हो, लेकिन रमेश के बारे मे कुछ मत कहना । भाभी कहे तो ले चलना । कही

[आगे वह नहीं बोल सका । धीरे-धीरे कागज के टुकडो को कुरेद-कुरेद कर जलाता है । शारदा क्षण-भर स्तम्भित, चकित, उन्हें देखती है । फिर सहसा खूँटी पर से चादर उतार लेती है ।]

शारदा—लेकिन मुझे तो एक बार जीजी से मिलना ही है । एक बार उनके चरण छूने ही हैं, नही तो दुनिया क्या कहेगी ।

देवराज—हाँ-हाँ, तुम जाओ, शारदा ! वे तुम्हें इस बात का पता भी नहीं लगने देंगी ।

[शारदा बाहर जाती है । नौकर साथ है । वहाँ केवल देवराज रह जाता है । वह बिजली के प्रकाश मे अँगीठी की आग के बनते हुए रगो को देखता रहता है । धीरे-धीरे उसके मुख का रग भी पलटता है और आँसुओं की दो बडी-बडी बूँदें अँगीठी मे गिर पडती हैं । एक धीमा-सा शब्द होता है और फिर निस्तब्धता छा जाती है ।]

[पटाक्षेप]

पात्र

कोमल	सवेदना-सदन का प्रिंसिपल । दाढी-मूंछ साफ, काले घुंघराले वाल, वीचोवीच माँग । काली पतलून, काला बूट, सफेद कमीज, लाल सुनहरा झिलमिल टाई । वाँहे लापरवाही से चढी हुई । आयु करीव ३५ वर्ष ।
करुणा	सवेदना-सदन की वाइस प्रिंसिपल । कटे वाल । रेशमी साडी । मखमली नीले जूते । आयु करीव २५ वर्ष ।
प्रो० प्राण	पश्चिमी वेशभूषा । आयु ४० वर्ष । एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ।
मिसेज प्राण	प्रो० प्राण की पत्नी । भारतीय सम्भ्रान्त वेशभूषा । गोरा भरा-भरा तन ।
सुकुमारी	प्रो० प्राण की वहन । आयु २० के आसपास । कन्धो से जरा ऊपर लहराते कटे वाल । आम के पत्ते की तरह मस्तक पर पडी एक केशपट्टी । गोरा छरैरा बदन, अधपेटी चोली, साडी, मखमली हरे जूते ।
पुरुष	एक भारतीय कुलीन व्यक्ति । सवेदना-मण्डली का ग्राहक । धोती-कुर्ता-चप्पल—वेशभूषा ।
स्त्री	पुरुष की पत्नी ।
राधा, माला, धारा, रागी, चानिकी	शोक-मण्डली की सदस्या । आयु १६-१८ के बीच । नगे पैर, काले गाउन । किसी के वाल कटे, किसी का जूडा, किसी की दो वेणियाँ, किसी की एक । कद लगभग ५ फुट ।

[टेलीफोन की घंटी वजती है। नौकर का प्रस्थान। पुन. बडबडाते हुए प्रवेश]

नौकर—टिन-टिन' टिन-टिन ! सभी के माँ-बाप मरने लगे। आये देर नहीं, टिन-टिन' [काम करते हुए] जाओ जहन्नुम मे ! सदन क्या खुला, माँ-बापो के लिए रोना-धोना ही बन्द। फोन किया, पहुँच गयी मण्डली गेने के लिए।

[नेपथ्य में कोलाहल : 'नमस्ते, नमस्ते जी' हँ हँ हँ अभी-अभी हाँ ' ओ हो, ओ हो' आदि।]

कोमल—[प्रवेश करते हुए] शानदार सफलता। घर-घर शोक-समिति की प्रशसा। मातम-मण्डली का इतना मान ! जनता सदन का लोहा मान गयी। मिस करुणा, आज गौरव से मस्तक चमक उठा।

करुणा—[बैठकर] अभी ट्रेनिंग ही कितने दिन की, तो भी अद्‌भुत कला-प्रदर्शन। मण्डली ने शोक-सगीत का महासागर वहा दिया। रुदन की वे रसभरी रागनियाँ अलापी—मुझे भी सफलता की इतनी आशा न थी, मि० कोमल।

कोमल—[प्रसन्नता से] हाँ, एक और आनन्द समाचार—परम शुभ सवाद।

करुणा—क्या ?

कोमल—रोग फैलने की झिलमिल आशा, प्लेग की आकुल प्रतीक्षा, महामारी का आगमन ! अहा ' अहा मिस करुणा, न-जाने क्या-क्या होने वाला है।

करुणा—[सभीत] महामारी ' प्लेग ओह ' !

कोमल—हँ हँ हँ' अरे, इतनी भयभीत ! यह घबराहट !

करुणा—महामारी प्लेग—सैंकडो मौतें। घर-घर मे हाहाकार ! चीत्कार की दर्दभरी पुकार !

कोमल—सैंकडो मौतें। घर-घर मे चीत्कार—हाहाकर ! तभी तो जन-सेवा का पावन अवसर मिलेगा। ऐसे भीपण काल मे हम सवेदना समितियाँ भेजकर, मातम-मडलियाँ पहुँचाकर मृतको के आहत परिवारो को-धीरज बँधायेंगे।

करुणा—ओह, यह तो मैं भूल ही गयी। सचमुच, परोपकार और मानव सेवा का अनुपम सयोग ! खूब'' !

कोमल—स्वर्ण और सम्मान वटोरने की रगीन घडियाँ ! डाक्टर गजू कहता है, प्लेग की पूरी-पूरी आशा। न भी हो, तो भी सदन जैसी परम उपकारी सस्था की महान आवश्यकता तो है ही।

करुणा—सरासर। इस व्यस्त और व्यापारी जीवन मे कौन किसे रोये, मरने वालो के लिए कौन नष्ट करे अपना अनमोल समय !

[नौकर का प्रवेश]

नौकर—क्लास लेंगे क्या ?

करुणा—भेज दो। [नौकर का प्रस्थान]

कोमल—हाँ, तो युग-युग से सवेदना-तृषित मानव को हम सहानुभूति की झील मे डुवो देंगे। सवेदना की नदी मे वहा देंगे। [पाँच लड़कियों का प्रवेश] आओ। आओ, हाँ, मैं कह रहा था, हम ससार के घायल दिल पर शीतल आलप करेंगे। रोते मनुष्य के आँसू हम अपने आँचल से पोछ, उसे धीरज बँधायेंगे। सवेदना-सदन के सामने महान् मिशन है। तुम्हे ससार मे वुद्ध की दया, ईसा की करुणा और महावीर की ममता की नदी वहा देनी है। तुम सदन के मिशन को पूरा करने वाली सैनिक—तुम प्रेम-करुणा-दया-शोक की पहरेदार ! [मेज पीटकर] और तुम्ही सब कुछ—

[तानियाँ] मेरा मतलब' ऐ ' ऐ' तुम्ही ससार के उज्ज्वल भविष्य की चौकीदार ! कल हमारी मडली ने कितना नाम कमाया, मालूम ?

करुणा—ये सभी सहायक दल के रूप मे उनके साथ थी।

कोमल—गु ''ड ! देखा, सदन की शान रख ली।

रागी—और प्रिंसिपल साहब, रत्ना तो ऐसी चीख-चीखकर रोयी, छाती पीट-पीट चिल्लायी, जैसे उसके सच्चे पिताजी ही चल बसे।

कोमल—अभिनय की कुशलता तो तभी। चाहे किसी का बाप मरे, तुम समझो तुम्हारे सगे पिताजी की मौत हो गयी। किसी के पति का स्वर्गवास हो या नरकवास, तुम अनुभव करो, तुम्हारा सुहाग लुट गया। एण्ड सो ऑन।

करुणा—सरासर।

धारा—वाह बहनजी, अपने पिताजी का मरना कौन चाहेगा ?

माला—कौन ऐसी नारी, जो पति के मरने की कल्पना करे ?

करुणा—हैं'''हैं ''अरे, कोई मर थोडे ही जाएगा। यह तो अनुभूति जगाने के लिए—अनुभूति तीव्र नही, तो अभिनय क्या खाक ! शोकाकुल परिवार को धीरज क्या धूल बँधाओगी !

कोमल—समस्त संसार मे हाहाकार। चारो ओर स्वार्थ का जलता रेगिस्तान, न जहाँ प्रेम की हरियाली, न सवेदना का निशान। मानव-जीवन, ओह मानव-जीवन एक बजर मैदान। इसमे तुम्हे करुणा की धारा बहानी होगी, इसमें तुम्हे शोक-सहानुभूति की झील लहरानी होगी। और, यह तभी हो सकेगा, जब तुम्हारा हृदय इतना विशाल हो, औरो की पीडा तुम्हारी पीडा हो, दूसरो का दर्द तुम्हारा दर्द हो। गैरो के पिताओ को अपने पिता मानो, भाइयो को भाई अनुभव करो, पतियो को एड सो ऑन।

करुणा—इसी महान मिशन और पावन कर्तव्य को सामने रखकर तुम्हे शिक्षा दी जा रही है। इसी का ध्यान रख, तुम्हे अभिनयकला सीखनी है। जिस जाति की नारी के सामने यह पवित्र आदर्श है, वही ससार को मानवता का नवीन सदेश दे सकेगी।

माला—इसमें क्या शक ?

राधा—सोलहो आने सच ।

कोमल—अनेक आशाओ-अभिलापाओ के साथ, सैकडो अरमानो के साथ, तुम्हे ट्रेनिंग दे रहे है ।

सब—विलकुल-विलकुल ।

कोमल—तव हाँ, यदि तुम्हे किसी जवान के मातम के लिए भेजा जाये तो ऍं ऍं ऍं तुम राधा ?

राधा—तो मैं [अभिनय] मैं ऐसे लचक-लचक पछाड खा-खाकर गिरू, ऐसा सगीतमय चीत्कार करू कि मृतक के माँ-वाप दग रह जाएं। सारा मुहल्ला सन्नाटे मे आ जाए ।

करुणा—शावाश ! पर सदा एक ही सुर मे नही रोना चाहिए। रोदन मे एकरसता रसाभास है। कभी सिसक-सिसक, तो कभी चीख-चीख-कर। मतलव यह, रोने की जितनी ही शैलियाँ होगी, उतना ही रस आएगा, उतना ही शोक-डूवे परिवार को धीरज मिलेगा—समझी चातिकी !

चातिकी—और क्या, रोने की सैंकडो शैलियाँ, अनेक प्रकार, अन-गिनत राग-रागनियाँ है। कभी दर्दीले तराने, कभी शोक के गाने, कभी भैरवी और कभी विहाग के राग निकालना। मैं तो सच, वहनजी, इतनी वैरायटी उपस्थित करू कि बडे-वडे सगीताचार्य भी बगलें झाँकने लगें।

कोमल—शावाश ! काम वह कमाल का हो, देखने-सुनने वाले मुग्ध हो जाएं ।

करुणा—हाँ, घटे-डेढ घटे चीखने-चिल्लाने के बाद, मृतक के रूप-गुण वर्णन करने चाहिए। इससे शोक-सवेदना मे चार चाँद लग जाते है ।

कोमल—और गले और फेफडे को आराम भी मिल जाता है ।

करुणा—[साभिनय] हाय, क्या लच्छेदार बाल थे, भौरो-से लहराते, रेशम से चमकते। हाय, वेचारे ने कभी

रागी—वहनजी, वह गजा हो तव ?

माला—तव, हाय क्या चिकनी-चिकनी चमचमाती खोपडी थी ! अभी तक क्या चाँदी-सी चमक रही है। पूनो के चन्दा-सी झिलमिलाती। मँजह पतीली-सी चमकती ।

करुण—हिश् पगली ! गजा नही, चाहे अधा हो, काना हो, ऐंचा-

ताना हो, पर कहना यही, कमलनैन कटार-सी आँखें और नरगिस की आँखें। गुण-गान ही किया जाता है, इससे शोक मे सघनता आ जाती है। मरने वाले का मूल्य भी बढ जाता है।

राधा—और क्या, मरने वाले के अवगुण कौन देखता है।

कोमल—शोक स्थायी भाव, मरने वाला आलम्बन विभाव, गुण-वर्णन उद्दीपन, 'ऊँ' 'ऊँ' ऊँ' आँसू-सिसकियाँ, सचारी भाव। सभी मिलकर करुण रस की सिद्धि। आचार्य मम्मट साफ कह मरे। उद्दीपन नही, तो रसाभास। इसलिए, मरने वाले के सदा गुण ही गुण देखने चाहिए। [टेलीफोन की घंटी] ओह, एक मिनट [प्रस्थान]।

करुणा—हाँ, समझी तुम लोग कुछ ?—खैर, बहुत-से ऐसे गुण याद कर लेने चाहिए, जो किसी पर भी चिपकाये जा सके।

चातिकी—जी, बहनजी।

धारा—इतने पर भी रोना न आए, हिचकियाँ न बँधे तो ?

राधा—याद भी रहता है, अभी तो बताया। समझ लो, तुम्हारे आदरणीय पिताजी बिस्तर गोल कर गये—सामने लाश पडी छटपटा रही है। घर मे हाहाकार मचा है।

रागी—तब भी आँखें सूखी-सूखी रहे, तब ?

माला—तब भी आँखे सूखी रहे, तो चली काहे को ट्रेनिंग लेने! जब सवेदना का पावन व्रत लिया, तो इतनी भी अनुभूति न जगायी, तो क्या किया ? अपनी बुद्धि से भी तो कुछ करो या सब पुस्तको मे ही!

चातिकी—पूछना कोई अपराध तो नही। लगी बडा रोब डालने!

करुणा—शान्तम्! शान्तम्··! आपस मे क्यो उलझने लगी ? हाँ, वैसे एक सवेदन-कलाकार के लिए कुछ भी कठिन नही। अभिनय-विशारद एक पल मे आँसुओ की झडी लगा दे। फिर भी कभी-कभी अनुभूति धोखा दे जाती है। ऐसे आडे समय आँखो से, ज़रा सरसो का तेल या पेनबाम लगा लो—बस आँखो के आकाश से रिमझिम-रिमझिम और फिर मूसलाधार।

सब—[तालियाँ] खूब! खूब! वाह, बहनजी, वाह!

[करतल-ध्वनि और हँसी]

करुणा—शान्तम् ! शान्तम् ! हाँ, तो अब तुम लोग एक छोटा-सा रिहर्सल कर लो। धारा, रागी, माला, चातिकी, राधा—सब [गोला बनाती हैं] अब मातम के लिए तैयार। एक दो तीन [कोमल आता है]।

कोमल—प्रारम्भ कर दिया ?

चातिकी—कर रही हैं।

करुणा—हाँ, शुरू करो। [तालियाँ बजाकर] एक दो तीन

धारा—[साभिनय] हाये, सेठानीजी, तुम क्यो मर गयी जी। उम्र चालीस साल, लम्बे-लम्बे बाल, गोरी-गोरी, मोटी

करुणा—क्या बकने लगी ? सारा पढा-पढाया मिटटी कर दिया। गला भी बन्द हो गया क्या ?

कोमल—घबराओ मत। तुम्हे तो बडो-बडो के लिए रोने जाना है। खैर, देखो, ध्यान से सुनो। हाँ, माला, तुम ?

माला—हाय, कहाँ गयी ? [गाते हुए] हम सबको बिलखता छोड चली। अपने सेठ से नाता तोड चली ओ छोटी सेठानीजी

कोमल—स्वर मे जरा लोच आना चाहिए। सुनने वाला तडप उठे।

चातिकी—स्वर क्या रसीला निकाला। लगता है जैसे भैस रम्भाती है।

माला—तू तो है बडी शोक-कला-विशारद ! रोती है, जैसे घोडी हिनहिना रही हो।

करुणा—[सकेत से] हिश् !

[लडकियो का हँसना]

कोमल—रसाभास ! रसाभास ! शोकस्थल मे हास। भाव, अनुभाव, उद्दीपन, सचारी आचार्य मम्मट साफ कह मरे हैं।

[सब लडकियों की दबी हँसी]

करुणा—शान्तम् ! शान्तम् ! खामोश ! मातमपुरसी करने जाओगी, तो क्या इसी प्रकार वहाँ छी

कोमल—तुम शुरू करो, रागी।

करुणा—[तालियो सहित] यस, एक -दो- तीन !

रागी—[घबराहट से] अहँ अहँ, सेठानीजी । मोटी-मोटी'' ऊँह-ऊँह—सेठानीजी !

करुणा—अरे, तुम्हे हो क्या गया ? यह तो क्लास है। अच्छा, तनिक जी ठिकाने लाओ। तब तक तुम, राधा।

राधा—हाय, छोटी सेठानीजी मोटी-मोटी सेठानीजी, तेरी तीन गज की पतली कमरिया हो तेरी रेशम की झिलमिल चदरिया हो। [गद्यात्मक] सोने की थलिया मे मखानो की खीर भर-भर कौन खायेगा ? आह, क्या विशाल हृदय पाया था। दर्जनो दशहरी आम बात-की-बात मे पचा जाती। खोमचे वाले पर इतना तरस आता कि दो-दो रुपये की चाट बात-की-बात मे चाट जाती। जब वह यह अशुभ समाचार सुनेगा, तो गली मे पछाड खा-खाकर गिरेगा। हाय, अब उससे कौन सेगे मिठाई लेकर' '

[प्रो० प्राण, मिसेज प्राण और सुकुमारी का प्रवेश]

कोमल—शाबाश ! शाबाश ! हाइट पर जा रही है चीज ! यस-यस—गो ऑन—आगे ''ओह आप ! आइए, आइए। अच्छा, तुम

[कोमल सकेत करता है। सबका प्रस्थान]

प्राण—डाक्टर गजू ने बताया। आपकी बडी प्रशसा की। लेसन चल रहा था क्या ? क्षमा करें।

कोमल—आजकल काम बहुत ज्यादा—नयी टीम तैयार की जा रही है। हाँ, आप मिस करुणा, वाइस प्रिंसिपल, और आप मि० प्राण, भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक।

प्राण—आप मिसेज प्राण और यह मेरी बहन मिस सुकुमारी। आप मि० कोमल, प्रिंसिपल सवेदना-सदन।

['हैं हैं हैं ' नमस्ते-नमस्ते' के शब्द]

प्राण—आप ही प्रबन्ध करेंगे हमारे यहाँ मातम का। आपके बडे-बडे शानदार स्यापे रहे। शोक-सवेदना के ससार मे आपने नया आदर्श उपस्थित कर दिया।

करुणा—इस मानव चोले से जितनी सेवा हो जाए कम। बैठिये न।

सुकुमारी—नो-नो, दैट्स ऑल राइट।

[सब कुर्सियो पर बैठते हैं।]

प्राण—सचमुच, इन दिनो रोदन-दलो की सबसे बडी आवश्यकता है—ग्रेटेस्ट सर्विस टू दि नेशन ।

कोमल—आपकी गुण-ग्राहकता के लिए धन्यवाद ।

प्राण—हाँ, मैं इसलिए आया मेरे पूज्य पिता

करुणा—स्वर्ग सिधार गये ।

कोमल—सुनकर वडी प्रसन्नता हुई ।

प्राण—नही-नही, अभी तो नही, पर शीघ्र आशा है ।

मिसेज प्राण—कृपा कर उनके लिए बढिया-सी टीम...

करुणा—किस दिन चाहिए ?

प्राण—अभी तक तो पिताजी ने कोई तारीख नही बतायी ।

सुकुमारी—और वेसुधी मे कोई दिन तय भी कर दें, तो विश्वास क्या ।

कोमल—डाक्टर गजू क्या कहते हैं ?

प्राण—कहते है, जो बच जाएँ, तो इलाज करना छोड दूँ ।

करुणा—सचमुच उनकी दवा मे ऐसा ही जादू है ।

कोमल—मेरा मतलब, कोई खास तारीख निश्चित नही की ?

मिसेज प्राण—यही तो सबसे वडी परेशानी । मौके पर मातम-मण्डली न मिली तो हम कही मुँह दिखाने लायक भी नही । परमात्मा ने धन दिया, मान दिया, हमे क्या कुछ नही बनाया । पिताजी के लिए समय पर एक शानदार शोक-समाज भी न जोड सके आह

सुकुमारी—कुल की शान मिट्टी मे मिल जाएगी ।

कोमल—पर जिस दिन मरने की आशा रखते हो, उस दिन के लिए एक टीम बुक करा लें ।

प्राण—यदि उस दिन भी दुर्भाग्य से उनकी मौत न हुई ?

करुणा—शत्रु से भी परमात्मा इतना नाराज न हो ।

मिसेज प्राण—सोचना तो पडता है ।

कोमल—जिस पिता ने आपके लिए इतना सब-कुछ किया, इतना धन छोडा, समाज-सेवा कर ससार मे नाम कमाया, जन-जन के मन मे जिसका इतना मान—इस असार ससार मे सब-कुछ मिल जाता है,

प्रो० प्राण ! पर ऐसे पिता कहाँ मिलते हैं ? पिता बार-बार तो जन्म लेता नही। क्या पूज्य पिताजी के लिए इतना भी रिस्क नही ले सकते ?

सुकुमारी—बुक करा लेना है तो सेफ, मि० प्राण। सचमुच ऐसे महान पिताजी कहाँ मिलेंगे ? [करुण अभिनय] दिल मे हूक-सी उठती है। कलेजा मुँह को आता है·· आह, पिताजी !

करुणा—दिल भारी न करो।

मिसेज प्राण—क्यो, क्या सोचा ?

प्राण—हाँ, अच्छा हें हें हें क्षमा करे। वैसे, कितने·· कुल चार्जेज होंगे ?

करुणा—इसकी चिन्ता न करें। क्वालिटी देखनी चाहिए। और पैसा तो है हाथ का मैल। यह माया आनी-जानी है।

सुकुमारी—ऑफ कोर्स।

मिसेज प्राण—फिर भी।

कोमल—'ए' क्लास टीम मे दस कलाकार। प्रति कलाकार सौ रुपये। पाँच घटे की सवेदना ड्यूटी। लाश उठाने से दो घटे पहले रोदन, चीत्कार-हाहाकार, फुलहाइट पर। इसके बाद आधा घण्टे तक सिसक-सिसक, सुबकियाँ ले-लेकर मृतक की कथा-वार्ता-स्मरण। पश्चात् बीस मिनट का अवकाश। चाय-पानी। प्रवन्ध ग्राहक की ओर से। इसके बाद, दस मिनट फिर स्मरण-कथा-वार्ता। फिर एक घटे तक वही पूर्व कार्यक्रम। लाश उठाने के बाद एक घटे तक फास्ट टेम्पो। हाय-हाय चीत्कार।

सुकुमारी—पाँच घटे से अधिक समय लगे तब ?

करुणा—तब ओवर टाइम देना होगा। तीस रुपये प्रति आर्टिस्ट, प्रति घण्टा।

मिसेज प्राण—चार्जेज बहुत अधिक हैं।

सुकुमारी—टू मच्च।

कोमल—अधिक ? आपके इतने बडे मुंह से इतनी छोटी बात ! प्रेम, सहानुभूति और सवेदना का भी क्या कोई मोल आँक सकेगा ? सब-कुछ मिल जाता है, मिसेज प्राण, पर सच्ची सवेदना-सहानुभूति कहाँ ! यही हम दे रहे हैं।

प्राण—हम तो आपके पर्मनिण्ट ग्राहक है, कुछ कन्सेशन दीजिए न । अपने सभी सम्बन्धियो मे आपकी ही टीम •

कोमल—हमारी हार्दिक कामना है कि हम आपकी जल्दी-जल्दी सेवा कर सकें । पर कन्सेशन के लिए विवश न कीजिए ।

सुकुमारी—बुक करा लेने पर यदि आवश्यकता न पडे ?

करुणा—पच्चीस प्रतिशत काटकर दाम वापस ।

प्राण—किन-किन तारीखो मे टीम मिल सकेगी ?

कोमल—मिस करुणाजी, तनिक आपके •

करुणा—[रजिस्टर उलटते हुए] कल और परसो तो हाँ, आज तारीख ?

सुकुमारी—नाइन्थ औक्टोव

करुणा—दस, ग्यारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह तक बुक । बारह खाली । रविवार—इससे शानदार दिन और क्या ! सभी सम्मिलित हो सकेंगे । मैं भी शायद निर्देश के लिए पहुंच जाऊँ । वैसे तो आप जानते ही हैं, मैं कही आती-जाती नही ।

कोमल—[चचल प्रसन्नता से] मिलाओ हाथ । [हाथ मिलाना] समा बंध जाएगा । दसो वर्षों तक चर्चा होगी—किसी दिलवाले का पिता मरा था । करुणाजी भी तैयार, भई मजा आ जाएगा । तो तय रही, बारह तारीख । [हाथ मिलाना] लकी—वेरी लकी !

करुणा—आज है नौ । पूरे तीन दिन मिल जाते है तैयारी और रिहर्सल के लिए । और ज्यादा दिन जीकर इन नालायक डाक्टरो की जेबें क्यो भरी जाएँ ? आज ही पिताजी से सलाह कर लें । मेरे विचार मे तो वह मान जाएँगे ।

प्राण—कहा नही जा सकता ।

मिसेज प्राण—बूढ़े आदमी, बीमारी के कारण अत्यन्त चिडचिडे, मर्जी के मालिक । हम उन्हे विवश तो नही कर सकते ।

सुकुमारी—हम चाहे जितने एनलाइटेण्ड हो—उनके सामने तो निरे बच्चे ही हैं । फटकार दिया, तो अपना-सा मुंह लेकर रह जाएँगे ।

कोमल—तब ऐसे वक्त मरने से क्या लाभ, जब आपके मित्र-मिलापी,

मगे-सम्बन्धी एकत्र न हो सकें। नगर-भर मे तहलका न मच जाए। गगन कोकिल-कंठियो की करुण स्वर-लहरियो से न गूंज उठे। और हम भी अपने अरमान दिल मे ही दबाये रह जाएँ।

प्राण—अभी कुछ भी तय नही कर पा रहा।

सुकुमारी—[प्राण से] एक फार्म ले लीजिए। घर से विचार करके भेज देंगे। डाक्टर और पिताजी से भी सलाह कर लें।

करुणा—हाँ, यही ठीक रहेगा। [फार्म देती है।]

मिसेज प्राण—तो अब, आज्ञा। [उठते हुए] अभी तक न साँस तेज हुई, न गले मे कफ ही अड़ा। न जाने कितना समय लग जाए।

कोमल—और क्या, लेकिन एक बात हो सकती है, मिस्टर प्राण!

प्राण—क्या?

कोमल—सम्भवत एक सप्ताह लग जाए।

प्राण—लगता तो ऐसा ही है।

कोमल—अभी काफी समय है। मिस सुकुमारी और मिसेज प्राण हमारे यहाँ ट्रेनिंग क्यो न ले लें?

करुणा—दोनों का कंठ भी बड़ा मधुर है।

प्राण—[मुस्कराकर] क्यो, क्या राय है?

सुकुमारी—[साभिनय] चाहती थी, पापा के लिए कलेजा चीरकर रोऊँ। दिखा दूँ इस हृदयहीन दुनिया को कि अपने डीयर पापा के लिए एक डॉटर क्या कर सकती है। [आँसू] कितना चाहती, दिल के सारे अरमान निकाल लूँ। [पोंछकर] पर आह कोमल सा'ब, दिल की दिल मे ही रह गयी। इतना टाइम कहाँ? प्रतिदिन डान्स के लिए जाना। और आप तो जानते ही है आर्ट इज आर्ट।

मिसेज प्राण—मेरी अलग मुसीबत। क्लब का इतना अधिक काम। अभी-अभी कल्चर सेंटर शुरू किया। कितना चाहती, रोते-रोते धरती-आकाश एक कर दूँ। संसार मे रोदन का नया रिकार्ड कायम कर दूँ। पर मजबूरियाँ कुछ करने ही नही देती, मिस करुणा।

करुणा—जीवन मे अनेक घड़ियाँ आती है, मिसेज प्राण, जब हम चाहने पर भी कुछ नही कर पाते।

सुकुमारी—ऑफ कोर्स। और उस कल्चर सेंटर मे कितना सिर खपाना पडता है—उफ ! कभी आइए न, करुणाजी, तब पता चले, हमारा देश कितना बैकवर्ड है।

कोमल—बिलकुल—बिलकुल।

प्राण—चाहता था, शानदार प्रबन्ध हो। सब देखकर दांतो तले अगुली दबाएँ। रिसर्च-लेक्चर-टूर के लिए शायद जल्दी ही जाना पडे। पीछे बढिया रोने वाले तो हो। लेडीज क्या-क्या करती फिरेंगी। पर कुछ भी समझ मे नही आ रहा।

कोमल—वैसे डाक्टर गजू अपने ही आदमी है। कभी आज तक अपना कहा नही टाला। कहे तो उनको टेलीफोन कर दू ?

प्राण—किसलिए ?

कोमल—आपके पिताजी को बारह तारीख को स्वर्ग का पासपोर्ट दे दे।

प्राण—थैक्स ! आज शाम तक खबर दूंगा। अच्छा।

['नमस्ते नमस्ते जी नमस्ते ' कहते हुए सबका प्रस्थान। एक पुरुष और स्त्री का घबराये हुए प्रवेश।]

पुरुष—कोमल कोमल सा'ब !

कोमल—हाँ-हाँ आइए आइए।

पुरुष—हमारे चाचाजी चाचाजी बस, एक-दो घण्टे के मेहमान।

स्त्री—बडी कृपा होगी। बस, शीघ्र एक बढिया-सी टीम का प्रबन्ध।

कोमल—इतनी शीघ्र प्रबन्ध ? इतनी शीघ्र तो प्रबन्ध नही हो सकता। क्षमा करें।

पुरुष—मौत कब आ जाय, कौन जाए ! कितना चाहा, दो-तीन दिन तो मिल जाते। मन की निकालने के लिए। आह, चाचाजी ने इतना भी वक्त नही दिया।

करुणा—हमारी विवशताओ पर भी तो तरस खाइए। काम समेटे नही सिमट पा रहा।

स्त्री—भगवान् करे, आपके काम की दिन-दूनी रात-चौगुनी बढती हो। आपका बडा अनुग्रह होगा, बहनजी।

कोमल—बुरा न मानें, हमारे जीवन मे जरा भी पक्चुएलिटी नही। प्रो० प्राण के पिताजी बढिया-से-बढिया दिन भी मरने को तैयार नही' और आपके चाचाजी बिना मौके ही बिस्तर गोल कर गये।

पुरुष—देश वर्षों से गुलाम रहा। हमारे चरित्र मे अनेक बुराइयाँ आ जाना स्वाभाविक है। अब हम स्वाधीन हुए है। धीरे-धीरे ही ये सब बुराइयाँ दूर होगी।

करुणा—यह तो है ही।

स्त्री—किसी तरह प्रबन्ध कर दे, कोमल सा'ब। कुल की लाज खतरे मे है।

कोमल—इस समय तो क्षमा करें। आपके पिताजी की हम अवश्य सेवा कर सकेंगे। आज कोई भी टीम खाली नही! दोनो 'ए' क्लास टीमे बुक हैं। एक 'बी' क्लास अवकाश मे—कल बहुत ओवर टाइम किया। दूसरी 'बी' क्लास 'पवन-पथ' के मैनेजिंग डायरेक्टर के लिए रिजर्व। उनकी नानी आज ही मरने वाली हैं।

पुरुष—आजकल बाजार आपके हाथ मे है, तभी तो इतने नखरे! धीरे-धीरे और कालेज खुल जाएँगे। अनेक टीमे शहर मे मिल जाएँगी—तब मालूम होगा।

करुणा—नाराज न हो। सचमुच एक भी टीम खाली नहीं। एक टीम ट्रेनिंग मे है बस।

स्त्री—तो उसे ही। अच्छी बहनजी, आपका अहसान कभी न भूलेंगे।

कोमल—लडकियाँ अभी नयी है। वैसे बडा मीठा गला, वेदनाभरी वाणी, छटपटाते स्वर और एक्टिंग भी शानदार, पर जरा

पुरुष—एक रिहर्सल करा दें। हमारी परेशानी आप समझ नही पा रहे है शायद, कोमल सा'ब।

करुणा—बुला लिया जाए?

कोमल—मानव-सेवा का व्रत ''तलवार की धार पर चलना। इनकार भी कैसे करें? [पुकारकर] भीखू!

पुरुष—अब जी मे जी आया। ओह, बडी चिन्ता थी।

[भीखू का प्रवेश]

कोमल—लडकियाँ क्लास मे हैं ?

भीखू—जी सरकार।

करुणा—जल्दी यही भेज दो।

भीखू—जी सरकार। [प्रस्थान]

पुरुष—जल्दी ही जरा एक छोटा-सा रिहर्सल हो जाए। यहाँ से छुट्टी पाऊँ।

स्त्री—और भी वहुत-से प्रवन्ध करने है। समाज मे जो रीति-रिवाज पड जाता है, करना ही पडता है। तनिक भी कमी हुई, तो लोग न जाने क्या-क्या

[लडकियों का प्रवेश]

करुणा—तैयार हो जाओ, शीघ्र ही मातम के लिए जाना है।

कोमल—हाँ, फटाफट वताते जाइए—चाचाजी की आयु ?

पुरुष—यही कोई पचपन वर्ष।

कोमल—चाची जीवित है ?

पुरुष—वह तो पैंतीस साल पहले ही

कोमल—नोट कर लो। चाचा वाल-विधुर थे। खाने-पीने, पहनने-ओढने का कोई विशेष शौक ?

स्त्री—भात, करेला, पराँठा, ककडी, फूट, जलेवी, अमरख, इमरती, वेर, दहीवडे, पूरी, खीरा—सभी का शौक।

कोमल—प्रेम मे निराश हो आत्मघात तो नहीं कर वैठे ?

स्त्री—[लाज से] हटो जी, यह भी कोई वात है।

कोमल—इसमे लजाने की वात नही। नयी टीम है, वैसे लडकियाँ वडी चमकदार हैं। फिर भी पूरी-पूरी जानकारी होना आवश्यक है। जितनी भी जानकारी होगी, उतना ही मजा आएगा रोने-सिसकने मे।

करुणा—डाक्टर को सारा हाल वताए विना इलाज कैसा ?

पुरुष—नही, ऐसी कोई वात नही।

कोमल—यही तो मैने कहा। ऐसे भगत आदमी भला क्या रोमास करेंगे। खैर, करुणाजी, वस अव चटपट टीम तैयार कर दें।

करुणा—समझ मे आ गया ? कोई और वात तो नही पूछनी ?

रागी—जी बहनजी, पर

कोमल—हाँ-हाँ, पूछ लो न—लजाना क्या ?

माला—उनकी व्यापारिक बुद्धि के बारे में

पुरुष—अक्ल के वह सौदागर, बुद्धि के भण्डार, लाखों का ब्लैक मार्केट किया, हजारों का हिसाब-किताब इधर से उधर। टैक्स बचाने में एक नम्बर उस्ताद ! मजाल है, कोई फँसा दे। सब कुछ किया। किस शान से, किस गौरव से दिवाला तक निकाला, पर आबरू में बट्टा न लगने दिया।

कोमल—महापुरुषों के यही लच्छन।

करुणा—और तो कोई बात नहीं ? [सब गर्दन हिलाती हैं] तब शुरू करो, वन-टू-थ्री। कहाँ चला गया, ओ ! कहाँ चला गया, चाचा मेरे !

सब—[गाते हुए] तुम सबको बिलखता छोड़ चले तुम सबको तड़फता छोड़ चले तुम सबको तड़फता छोड़ चले तुम सबको बिलखता छोड़ चले तेरी सोने की सूनी अटरिया हो हो रे

कोमल—शाबाश ! शाबाश !

पुरुष—काम तो अच्छा कर जाएँगी।

स्त्री—अहा, क्या सुरीला गला है, पर

करुणा—पर क्या ?

स्त्री—आँखों मे आँसुओं का पता नहीं।

पुरुष—हैं-हैं-हैं-हैं, क्षमा करें। एक्शन मे भी तनिक कमी-सी लगती है।

कोमल—आपके सामने सकोच है। जब लाश सामने होगी तो वह सिसक-सिसककर रोएँगी कि आप सारा शोक भूल इनका तमाशा देखते रह जाएँगे। लोग मोहित न हो जाएँ तो कहना !

करुणा—तनिक रिहर्सल तो पूरा हो जाए। बस, वन-टू-थ्री ! [तालियाँ बजाकर] एक-दो-तीन।

माला—हाय सेठ ! हाय सेठ !

सब—हाय सेठ ! हाय सेठ !

माला—दान-धरम करवैया सेठ !

सब—दान-धरम करवैया सेठ !

माला—सूम शिरोमणि मोटा सेठ !

सब—सूम शिरोमणि मोटा सेठ !

माला—हाय अकल का मोटा सेठ !

सब—हाय अकल का मोटा सेठ !

माला—[सस्वर] हाय सेठ, तू कहाँ गया, इतना तो वता के जा ! इतना तो वता जा ' जरा, धीरज बँधा के जा ।

[सब उसी स्वर मे दोहराती हैं]

कोमल—शावाश ! शावाश ! आँसू-आँसू ! हाइटपरजा रहा है रोदन ! आँसू-आँसू !

धारा—क्यो आँसू हाय आते ही नही, इतना तो वता के जा ! हाय, धीरज बँधा के जा !

कोमल—शावाश ! शावाश ! यानी वेदना की हद ! आँसू कहाँ से आये । आँसू न आये तो वालाओ की जान का खतरा । करुणाजी, आँसू शीघ्र ! जान का खतरा !

करुणा—[सस्वर] तू हमे छोड के कहाँ चला, इतना तो वता के जा ! क्यो लाखो का कर्जा छोड मरा, इतना तो वता के जा !

पुरुष—नही-नही चाचाजी ने तनिक भी कर्जा नही छोडा ।

कोमल—ना-ना, इससे आपका मान वढ़ेगा । कितना सपूत भतीजा, चाचा का लाखो का कर्जा चुकाया । कुल की मर्यादा पर आँच न आने दी और कितनी पतिव्रता भतीज-बहू कि उफ तक नही की !

स्त्री—इन्हे कहने भी दो । ठीक है । हजारो रुपया वर्वाद किया चाचाजी के लिए, पर मैंने जो कभी हाथ पकडा हो इनका ।

पुरुष—वैसे और सब बातें ठीक, आशातीत । छटपटाती वाणी, तडपता स्वर, कोयल की कूक-सी, पपीहा की हूक-सी, लेकिन आँसू न आए, तो सारा मजा मिट्टी हो जाएगा ।

करुणा—आँसू तो ऐसे आएँगे कि रोके न रुके ।

माला—वहनजी, किसी को सामने लिटा दीजिए । वैठकर अभ्यास हो जाए । अनुभूति तभी जागेगी, जब कोई सामने लाश के समान '

कोमल—दो मिन के लिए आप ही कष्ट करें।

पुरुष—क्या मैं ही तनिक देर के लिए · काम शीघ्र निवट जाएगा ?

स्त्री—वाह, मैं तो कभी ना लेटने दूँगी। कन्न कुछ हो गया तो तुम तो आराम से चल बसोगे, मुसीवत तो मेरी आएगी।

राधा—चातिकी को लिटा दें, बहनजी, इसका गला भी ठीक ।

चातकी—वाह, तू क्यो नही लेट जाती ? मैं नही, बहनजी।

कोमल—चलो, चलो जल्दी, देर होती है।

चातिकी—हम तो ना, हमे तो शरम लगै हे।

करुणा—पगली, शर्म काहे की ? जन-सेवा मे शर्म ! चल, ऐं शावाश ! [चातिकी मुर्दे की तरह लेटती है।]

रागी—हाय, वेचारी चल वसी दो दिन भी बीमार न रही—हाय चातिकी !

चातिकी—[उठने का प्रयत्न] मरे तू कम्वख्त ! बहनजी, मैं नही ·

करुणा—शान्तम्, शान्तम् ! इस बार आँसुओ की मूसलाधार वर्षा होने लगे।

सब—हाय, चाचा ! हाय, चाचा ! हाय, चाचा ! हाय, चाचा ! हाय, अचानक मर गया चाचा—विस्तर गोल कर गया चाचा। ऊँ-ऊँ ऊँ ··हाय चाचा, हाय चाचा ! [सस्वर] तू लाखो का कर्जा छोड चला। ओ इतना तो वता के जा। हाय, हमे धीरज वँधा के जा।

कोमल—आँसू ! आँसू ! [रागी और धारा के पास आकर उनकी कमर मे नोचता है] शावाश ! आँसू !

माला—आय-आय-हाँ। [रोते हुए] हाय, तू हमको तडफता छोड चला। ऊँ-ऊँ-ऊँ · इस दुनिया से क्यो मुँह मोड चला। हाँ-हाँ, इतना तो

माला—हाय चाचा ! चाच मर गया ! चाचा मर गया !

[चातिकी 'आय-आय' करती है। सब रोते हुए 'हाय चाचा ! हाय चाचा' कह उसे पीटने लगती हैं। चातिकी खडी हो जाती है। सबमे कोलाहल और हाथापाई]

कोमल—शावाश ! शावाश !

करुणा—चलो-चलो क्लास मे। [कोलाहल के साथ प्रस्थान] अभिनय शानदार।

स्त्री—बढिया काम कर जाएँगी। हम सन्तुष्ट हैं, शीघ्र तैयार कर दें।

पुरुष—अभी घर से रुपया भेजता हूं। टीम तैयार रहे।

['नमस्ते-नमस्ते' कहकर दोनो का प्रस्थान]

करुणा—माला ने तो काम ही बिगाडा होता।

कोमल—गाहक फँस गया।

[कोलाहल के साथ सभी लडकियो का प्रवेश]

चातिकी—मुझे क्या इसलिए लिटाया था ? अभी तक छाती मे पीडा—ऊँ-ऊँ-ऊँ ! माला ने जान-बूझकर

करुणा—अभिनय का यह अर्थ तो नही, बेचारी को धुन डाला।

माला—शोक के कारण यह ध्यान ही न रहा कि यह चातिकी है।

रागी—ऐसी हालत मे ध्यान रहता है क्या ? विशेपकर, जब चातिकी मर

चातिकी—मरे तू कम्बख्त ! [सबका हँसना।]

करुणा—शान्तम् ! शान्तम् ! पर माला की आंखो से आंसू की झडी लग गयी। कला का अर्थ तो यही है।

रागी—रोना आ कैसे गया ? मुझे तो कोशिश करने पर भी

माला—देर तक प्रयत्न किया, आँसुओ का मीलो तक पता नही। देवी मैया की मानता मानी, तब भी आँखें सूखी-सूखी। फिर ध्यान आया, सोचा प्रिंसिपल ने आत्महत्या कर ली है। बिस्तर पर पडे, घायल पछी की तरह छटपटा रहे हैं गिडगिडा रहे हैं—बचाओ-बचाओ ! डाक्टर डाक्टर ! करुणाजी ! करुणाजी ! बचाओ ! आह, अन्त मे तडप-तडप कर दम तोड दिया।

चातिकी—सच ?

माला—फिर सोचने लगी—हाय ! अब हमे कौन पढाएगा ? हाय, भरी जवानी मे यह वज्रपात ! सोचते ही आँखें छलक उठी। हाय, आज इनके लिए रोने वाला भी कोई नही। जो सबके लिए रोदन दल भेजे, आह ! आज उसके लिए

कोमल—शाबाश ! माला ने रोदन कला मे [थपथपाता है] कमाल पा लिया। ऐसी कलाकारों से ही सदन की शान है।

राधा—और ये धारा और रागी भी तो रो रही थो।

रागी—अचानक कमर मे जैसे बिच्छू ने डक मारा—तडप उठी। अभी तक आग-सी लग रही है।

धारा—यही मेरा हाल—कमर की खाल उखाड ली किसी ने। छटपटाकर देखा, तो प्रिंसिपल सा'ब नोच रहे है। बडे बुरे हैं प्रिंसिपल सा'ब।

[सबका हँसना]

करुणा—उनके सामने अपमान कराना था क्या ?

चातिकी—अच्छा हुआ ' तुम्हे भी तो पता चला। अहा जी [तालियाँ बजाती हैं। सबका हँसना। पुरुष-स्त्री का पुनः प्रवेश।]

पुरुष—घर भी न पहुँच पाये। रास्ते मे ही पता चल गया। चाचा जी चल बसे। [नोट देता है]।

कोमल—[गिनते हुए] गुड, लकी, वैरी लकी ! [नमस्ते कहकर दोनो का प्रस्थान।]

करुणा—शीघ्र तैयार हो लो। और वह बढिया काम करना कि हमेशा तुम्हारी ही टीम वहाँ···

कोमल—थोडा-सा पेनबाम अवश्य साथ रखना, कही वहाँ आँसू ही न आएँ।

माला—और क्या, वहाँ प्रिंसिपल सा'ब नोचने नही जाएँगे।

[सबका हँसना]

कोमल—ड्रेस इत्यादि पहन लो तब तक।

[भीखू का प्रवेश। तार का लिफाफा देता है। करुणा खोलकर पढ़ती है]

कोमल—क्या है ?

करुणा—[लिफाफा देते हुए] पिताजी का स्वर्गवास

कोमल—[पढते हुए] ओह ! यह वज्रपात ! मैं आपके दु.ख मे समान दु:खी हूँ, मिस करुणा !

करुणा—भगवान् की इच्छा । मौत का कोई इलाज नही । अरे, तुम तैयार हो लो न ।

माला—आपके पिताजी की

करुणा—हाँ, बीमार भी नही थे कुछ ।

रागी—[ताली बजाकर] अहा जी तब तो हम वही जाएँगे ।

चातिकी—हम भी सब पिताजी के लिए शोक-सवेदना वहाँ दिखाऊँगी अपना आर्ट ।

करुणा—क्या बकती है ! चलो, तैयार हो लो । वहाँ पहुँचना है शीघ्र । वह एडवास दे गया है ।

सब—हम तो पिताजी की मातमपुरसी करने जाएँगी ।

कोमल—अरे भई, कहना माना करो । उससे एडवास आ चुका है, वह क्या कहेगा । और वहाँ तो रोने वाले बहुत हैं ।

माला—नही, हम तो नही । वाह, घर म मौत हो, हम दूसरो के यहाँ । हम नही हमे तो पिताजी के लिए

करुणा—पगली कही की !

सब—नही-नही, चलो-चलो, शीघ्र तैयारी करें । [सबका प्रस्थान]

कोमल—अरे अरे अजीब हठीली लडकियाँ

करुणा—सुनो, सुनो तो

[दोनों का प्रस्थान]